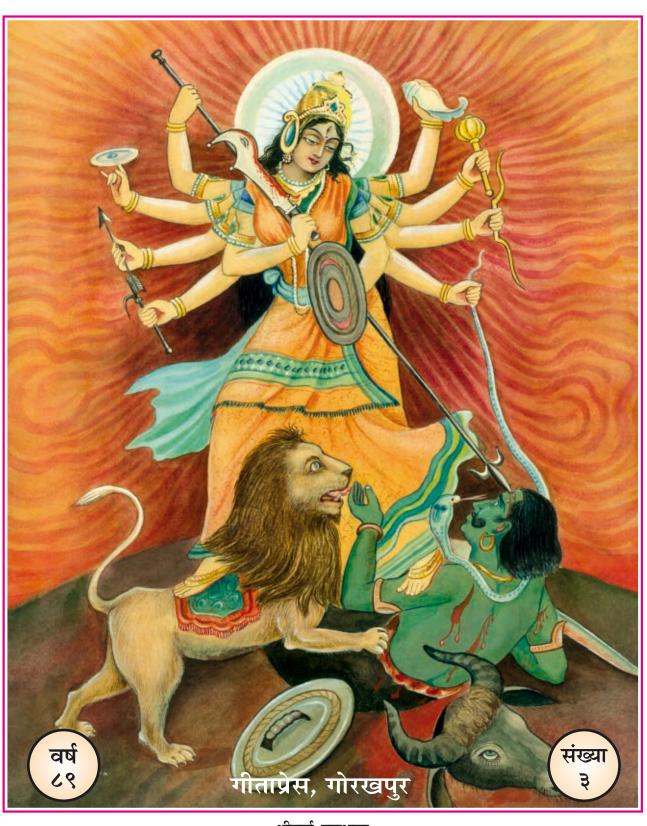
कल्याण

मल्य ८ रुपये



श्रीदुर्गा-दशभुजा





'सीता अनुज समेत प्रभु नीलजलद तनु स्याम'

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः। तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

वर्ष ८९ गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७१, श्रीकृष्ण-सं० ५२४०, मार्च २०१५ ई० पूर्ण संख्या १०६०

प्रार्थना

卐

卐

卐

卐

卐

卐

S S

卐

卐

卐

卐

श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणम्। नवकंजलोचन, कंज-मुख कर-कंज पद-कंजारुणम्॥१॥ 卐 कंदर्प अगणित अमित छिब, नवनील-नीरद-सुंदरम्। 卐 पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुता-वरम्॥ २॥ 卐 दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनम्। 卐 आनँदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनम्॥३॥ 卐 सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदार अंग विभूषणम्। 卐 आजानुभुज शर-चाप-धर संग्राम-जित-खर-दूषणम्॥४॥ 卐 इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनम्। 卐 मम हृदय कंज निवास कुरु कामादि-खल-दल-गंजनम्॥५॥ 卐 卐 [विनय-पत्रिका]

राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ (संस्करण २,१५,०००) कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७१, श्रीकृष्ण-सं० ५२४०, मार्च २०१५ ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या पृष्ठ-संख्या विषय विषय १२- 'प्रिय लागे मोहि ब्रज की बीथिन' १- प्रार्थना...... ३ (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) २८ २– कल्याण ५ ३- गोसेवाकी प्रेरणा १३- मनका संयम (श्रीगौतमसिंहजी पटेल) ३० (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६ १४- सेवा-धर्म (डॉ० श्रीनरेशकुमारजी शास्त्री, ४- संसारमें सार क्या है ? (स्वामी श्रीचिन्दानन्दजी महाराज 'सिहोरवाले') ११ १५- निम्बार्क-सम्प्रदायको सेवा-भक्ति ५- भगवानमें मन कैसे लगे? (पं० श्रीरामस्वरूपजी गौड 'निम्बार्कभूषण') ३३ (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) १५ १६- भारतीय कलाके प्रतिमानोंमें शिवलिंग और भगवान् शिव (विद्यावाचस्पति डॉ॰ श्रीराजेशजी उपाध्याय नार्मदेय, ६- विमल पन्थ [कविता] (श्रीमृदुलमोहनजी अवधिया)१८ एम० ए०, पी-एच० डी०) ३५ ७- अपेक्षा है विषादकी जननी (डॉ॰ श्रीशैलजाजी) १९ १७- आवरणचित्र-परिचय..... ३७ १८- सेवा [कहानी] (श्री 'चक्र') ३८ ८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) २१ १९- साधनोपयोगी पत्र..... ४० २०- व्रतोत्सव-पर्व [वैशाखमासके व्रतपर्व]४३ ९- मन को बुहार [कविता] (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०) २३ २१- कृपानुभृति ४४ १०- अन्त मित सो गित (श्रीइन्द्रमलजी राठी)...... २४ २२- पढो, समझो और करो४५ ११- जीवनमें सफलताके सूत्र २३- मनन करने योग्य.....४८ (श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)......२५ २४- गोशालाओंकी सुरक्षा [सम्पादक] ५० चित्र-सूची १- श्रीदुर्गा-दशभुजा आवरण-पृष्ठ २- 'सीता अनुज समेत प्रभु नीलजलद तनु स्याम'.... (") मुख-पृष्ठ ३ - राक्षसवधकी प्रतिज्ञा............ (इकरंगा)...........९ ४- उमा-महेश्वर ("" 3 & ५- राजा चित्रकेतु ४८ जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ एकवर्षीय शुल्क पंचवर्षीय शुल्क जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ विराट जय जगत्पते । गौरीपति रमापते ॥ जय अजिल्द ₹२०० अजिल्द ₹१००० विदेशमें Air Mail) वार्षिक US\$ 45 (₹2700) Us Cheque Collection सजिल्द ₹११०० सजिल्द ₹२२० पंचवर्षीय US\$ 225 (₹13500) सजिल्द शुल्क Charges 6\$ Extra संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिसम्पादक —नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक - राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक - डॉ॰ प्रेमप्रकाश लक्कड केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित website: www.gitapress.org e-mail: kalyan@gitapress.org © (0551) 2334721 सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें। Online सदस्यता-शुल्क भुगतानहेतु gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

संख्या ३] कल्याण

याद रखो - प्रेम सारी दैवी सम्पत्तियोंका मूल विश्वसेवक और विशालहृदय होगा। उसका न तो स्रोत है। जहाँ प्रेम है, वहाँ त्याग, सद्भावना, सहिष्णुता, कोई वैरी रहेगा और न उसकी किसी वस्तुविशेषमें

क्षमा, उदारता, वदान्यता, मैत्री, अहिंसा, सेवा, सरलता, उन्मुक्तहृदयता, निष्कामता, प्रसन्नता, सत्य, विश्वास,

साहस और सौजन्य आदि सद्गुण अपने-आप आ जाते हैं। इसके विपरीत जहाँ स्वार्थ है, वहीं भय है

और जहाँ भय है, वहाँ परिग्रह, दुर्भाव, असहिष्णुता, कामना, क्रोध, कृपणता, अनुदारता, द्वेष, वैर, कपट,

दम्भ, विषाद, अविश्वास, घृणा, लोभ, प्रतारणा, कायरता और कुटिलता आदि नीच वृत्तियाँ अपने-आप उत्पन्न हो जाती हैं।

जहाँ दैवी सम्पत्ति है, वहाँ सहज सुख, उल्लास आनन्द, आत्मीयता रहते हैं और जहाँ आसुरी सम्पत्ति है, वहाँ शोक, विषाद, दु:ख, परायापन रहते हैं।

याद रखो-प्रेम जितना शुद्ध होगा, उतना ही

भगवदिभमुखी होगा और जहाँ भगवत्प्रेम होगा, वहाँ मनुष्यमें निर्भयता और निश्चिन्तता इतनी अधिक बढ़ जायगी कि वह कर्तव्यपालनमें, सत्यभाषणमें, दूसरोंका

उपकार करनेमें, अपना सर्वस्व देकर भी सेवा करनेमें और जीवनकी महान् कठिनाइयोंमें जरा भी नहीं डरेगा। वह दृढप्रतिज्ञ, मनस्वी, तेजस्वी, साहसी और वीर होनेके साथ ही अत्यन्त विनम्र, आदर्श, विनयी,

मधुरभाषी, समझकर करनेवाला और शान्तिप्रिय होगा। उससे किसीका अपकार तो होगा ही नहीं। वह सर्वथा नि:स्वार्थ, भगवद्विश्वासी, भगवत्कुपापर निर्भर रहनेवाला और सदा आनन्दमें निमग्न रहनेवाला होगा।

आसक्ति ही होगी। वह नित्य भगवत्-कर्म-रत, भक्तिरसाप्लुतहृदय और भगवत्परायण होगा।

याद रखो - किसी भी भयमें इतनी शक्ति नहीं है जो भगवत्कृपाकी अपार शक्तिके सामने ठहर सके। किसी भी पापमें इतनी शक्ति नहीं है जो भगवद्धक्तिके सामने टिक सके।

किसी भी तापमें इतनी शक्ति नहीं है जो भगवत्प्रेमकी शीतलताके सामने रह सके। याद रखो—तुमपर भगवान्की अनन्त कृपा है,

इसलिये भगवानुकी भक्ति तुम्हारे हृदयमें लहरा रही है और भगवत्प्रेममें तुम डूबना ही चाहते हो। फिर भय, पाप, ताप कहाँ रहेंगे ? उनको तो नष्ट हुए ही समझो।

तुमने सचमुच भगवत्कृपापर विश्वास ही नहीं किया। भगवान्ने स्वयं घोषणा की है-जो मुझमें विश्वास करता है, वह मेरी कृपासे सारी कठिनाइयोंसे तर जाता है। तुम भगवान्के हो, भगवान् तुम्हारे हैं। उनसे

अधिक निकटस्थ आत्मीय तुम्हारा और कोई नहीं है।

जबतक तुम्हें पाप-ताप तथा भय सताते हैं, तबतक

वे तुम्हारी जितनी और जहाँतक सँभाल करते हैं, उतनी और वहाँतककी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। याद रखो — भगवान् तुम्हारे दोषोंको तुरंत क्षमा

कर देंगे और तुम्हें सदाके लिये अपना लेंगे। तुम एक भगवत्प्रेमी या तो सारे संसारमें भगवान्को देखता बार उनकी सुहृदयता और आत्मीयतापर पूर्ण विश्वास है या सारे संसारको भगवानुमें देखता है। इसलिये करके उन्हें मुक्तहृदयसे पुकार तो लो! वह स्वाभाविक ही निर्भय, नमनशील, विश्वप्रेमी, 'शिव'

गोसेवाकी प्रेरणा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) आजकल इस देशमें गोधनका प्रतिदिन ह्रास होता वह ज्यादा मुलायम होता है। मुलायम चमड़ेसे बनी जा रहा है, जिससे गोदुग्ध एवं कई लाभोंके अभावमें हुई टोपी, घड़ी, बैग और जूता आदि महँगे बिकते हैं। हाहाकार मचा हुआ है। शास्त्रत: और लोकत: विचार कुछ सज्जन कलकत्ते कसाईखानेमें गये थे। करके देखें तो यह मालूम होगा कि धनोंमें गोधन एक गौओंकी हत्या किस प्रकार होती है, इसके विषयमें

प्रधान संरक्षणीय धन है। अत: हम सबको अपनी शक्तिके अनुसार अपने गोधनकी सेवा करनी चाहिये।

हम सब यदि गौओंकी सेवा न करें तो यह हम सबकी

कृतघ्नता है; क्योंकि हम सब गौओंसे जितना लाभ

उठाते हैं, उसके बदलेमें उसकी सेवा न करें तो कृतघ्नता ही कही जायगी।

वास्तवमें गौओंकी सेवाके विषयमें कहनेका मैं अधिकारी भी नहीं हूँ; क्योंकि जैसे आपलोग दुध पीते हैं, वैसे ही मैं भी दूध पीता हूँ। गोसेवा आप भी नहीं

करते और मुझसे भी नहीं बनती। इस कारण भी मैं अधिकारी नहीं हूँ। अच्छे पुरुष, जिन्होंने गौओंकी सेवा की है, उनके द्वारा तथा शास्त्रके द्वारा अपनेको जो शिक्षा मिल रही है, उसको आधार बनाकर हम लोगोंको

गौओंकी सेवा करनी चाहिये। पूर्वके जमानेमें नन्दके यहाँ लाखों गौएँ थीं। विराटके पास करीब एक लाख गायें थीं। दु:खकी

बात है कि इस समय गौएँ बहुत काफी मात्रामें मारी जा रही हैं। यह कानून है कि १४ वर्षसे कम आयुकी गौएँ न मारी जायँ, किंतु यह कानून केवल

सरकारी कागजोंमें ही है। यह कानून काममें लानेके लिये नहीं बनाया गया है, केवल लोगोंको दिखानेके

वास्ते बनाया गया है ताकि लोगोंमें उत्तेजना न हो। छोटे-छोटे बछड़े-बिछया भी मारे जाते हैं; क्योंकि उनका चमड़ा मुलायम होता है, बढ़िया होता है। अपने-आप मर जानेवाली गौका चमड़ा कठोर होता

है, उनके जूते खराब तथा सस्ते होते हैं और जीवित

उन्होंने बताया कि गौओंके ऊपर गरम खूब खौलता हुआ पानी छिड़का जाता है, जिससे उनका चमड़ा मुलायम हो जाता है। खौलते पानीको छिड़ककर

िभाग ८९

लाठियोंसे उनको मारा जाता है, जिससे चमडा फूल जाय और खूब मुलायम हो जाय। इसके बाद उसके जीते ही उसका चमड़ा उतारा जाता है, चमड़ा उतारते हुए वह कॉॅंपती, डकारती-छटपटाती, तड़प-तड़पकर

मार-मारकर उसका चमड़ा उतारा जाता है, ऐसी भी बात सुनी जाती है और किसीमें ऐसा सुना जाता है कि पहले चमडा उतार लिया जाता है फिर वह मर जाती है या उसका कल्ल कर दिया जाता है। उनका कहना

है कि चमड़ा पहले इसलिये उतार लिया जाता है, जिससे ज्यादा मुलायम रहे। यह भी बताते हैं कि उस चमड़ेके जो जूते बनते हैं, वे एक नम्बरके होते हैं। इस पापके भागी छ: होते हैं—(१) गायको

कसाईके हाथ बिक्री करनेवाले, (२) गायके वधके

लिये सलाह-आज्ञा देनेवाले, (३) गायको मारनेवाले,

मर जाती है। किसी-किसी कसाईखानेमें तो गायको

(४) मांस खरीदने या पकानेवाले, (५) गोमांस-भक्षण करनेवाले और (६) चमड़ा या अन्य अवयवसे बनी वस्तुओंका उपभोग करनेवाले। ये सभी समानरूपसे पापके भागी होते हैं।

मांसके विषयमें मनुजीने बतलाया है कि हिंसा करनेवाले, उसमें सम्मति देनेवाले, बिक्री करनेवाले,

पकानेवाले और खानेवाले—ये सभी समान-भावसे पापके भागी होते हैं। इस बातको सुनकर आप सबको इसके गौक्षांnduism Discord Server https://dsg.gg/dharma में MADE WITH I ÖVE BY Akinash Sha

संख्या ३] _{इहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहहह}					
होटलोंमें गौका मांस पकाया जाता है, हम कभी उन	लाना चाहिये। यदि चमड़ा काममें लाते हैं और उसके				
होटलोंमें नहीं जायँगें। कुछ लोग कहते हैं कि हम	विषयमें कहा जाता है कि यह 'खादी प्रतिष्ठानका				
े होटलोंमें तो जाते हैं पर मांस नहीं खाते। मांस भले ही	चमड़ा है, मरी हुई गऊका है, अपनी मौतसे मरी हुई				
न खाओ पर उसका रस दालमें, भातमें, परसनेवाली	गायका चमड़ा है, मारी हुई गऊका नहीं, तो हमारा				
चम्मच आदिके द्वारा पड़ जाता होगा, सारे सामानोंमें	इतना विरोध नहीं है। उसको काममें लाया जा सकता				
चम्मच पड़ती ही होगी, हाथ वही, संसर्ग वही। उसके	है, जब आपको पूरी जानकारी हो जाय कि वह चमड़ा				
परमाणु तो आ ही जाते हैं। इसलिये होटलोंमें न जानेकी	अपनेसे मरी हुई ही गायका है, इसकी हिंसा नहीं की				
शपथ लेनी चाहिये। होटलोंमें न जानेसे मर तो जायँगे	गयी है, तब भी यह प्रतिज्ञा जरूर करनी चाहिये कि जो				
नहीं, होटलमें गये बिना भी संसारमें बहुत लोग जी रहे	गायें चमड़ेके लिये, मांसके लिये मारी जाती हैं, उन				
हैं, कोई मर नहीं रहे हैं। यह एक मामूली बात है।	गायोंके चमड़ेका जूता वगैरह काममें नहीं लाऊँगा।				
इसलिये हमलोगोंको यह तो प्रतिज्ञा ही कर लेनी है कि	गायोंके चमड़ोंके जूतोंका और होटलमें जानेका त्याग				
किसी भी होटलमें जाकर हम भोजन नहीं करेंगे। यह	कर देना चाहिये। किसी भी होटलमें जाकर खाना या				
भी मामूली बात है, उत्तम बात तो यह है कि बाजारकी	होटलकी चीज मँगाकर या रेलमें होटलकी चीज				
कोई चीज न खायी जाय, चाहे खोमचेका हो या मिठाई	मँगाकर खाना आपको जँचे तो एकदम सदाके लिये				
हो अथवा पान हो या चाय; क्योंकि बाजारकी सभी	त्याग देना चाहिये; क्योंकि कितने वर्ष जीओगे, आखिरमें				
चीजें अपवित्र होती हैं। उसमें घी अपवित्र, चीनी	तो मरोगे ही। ऐसे कलंकित होकर संसारसे क्यों जायँ।				
अपवित्र, जल अपवित्र—सभी अपवित्र। इतना त्याग न	ऐसा करना अपने कुलमें, जातिमें, देशमें कलंक लगाना				
हो सके तो कम-से-कम होटलमें खानेका त्याग तो कर	है। आप यदि इसे ठीक समझें तो 'परमात्माकी जय'				
ही देना चाहिये।	बोलकर इसकी स्वीकृति दें और इसकी प्रतिज्ञा स्वीकार				
होटलोंमें खानसामे सभी धर्म-जातिके होते हैं,	करें।'				
उसमें कोई जातिका भेद नहीं रहता। वहाँ कोई शुद्धि	दूसरी बात यह है कि जिसे आप अपनी यथाशक्ति				
नहीं रहती, कोई अण्डे, मांस, मदिरा रखते हैं। इनका	कर सकते हैं—हम गायका दूध पीते हैं, इसलिये हमें				
नाम लेनेसे मनुष्यको पाप लगता है। मैं जो उनके नामका	हर एक प्रकारसे गायकी सेवा करनी चाहिये। जहाँ				
उच्चारण करता हूँ, वह उनके निषेधके लिये करता हूँ,	कहीं गोरक्षा-आन्दोलन हो उसमें भाग लेना चाहिये,				
इसलिये शायद पाप नहीं लगे। इस विषयमें तो सौगन्ध	गायोंकी हिंसा बन्द हो जानी चाहिये। कुछ लोग				
कर ही लेनी चाहिये कि किसी भी होटलमें नहीं जाना	कहते हैं कि यदि गायें कटना बिलकुल बन्द हो				
है। दूसरी उत्तम बात यह है कि चमड़ेका सामान काममें	जायँगी तो बूढ़ी गायोंको घास और चारा कहाँसे				
लाना ही नहीं है; क्योंकि मालूम नहीं होता कि यह	मिलेगा। चारा पैदा करनेवाला भगवान् संसारमें मौजूद				
चमड़ा अपनेसे मरी गायका है या मारी गयी गायका,	है, भगवान् कहीं मरा नहीं है। उसके भरोसेपर आप				
मरी हुई गायका चमड़ा उतारा गया है या चमड़ा	गौओंका पालन करें।				
उतारकर फिर वह मारी गयी है। चमड़ा चाहे पहले	इस विचारसे तो यह भी सवाल पैदा हो सकता				
उतारे या बादमें, दोनोंमें पाप है। चमड़ा उतारकर मारे	है कि जो बूढ़े-बूढ़े आदमी हो गये हैं, उनको मार				
तो और ज्यादा पाप है। इसलिये चमड़ा काममें नहीं	डालना चाहिये; क्योंकि वे निकम्मे हो गये हैं। वे				

भाग ८९ काम तो कुछ करते नहीं, अन्न खा जाते हैं, जवान जा; क्योंकि बहुत-से योद्धा तो मेरे द्वारा पहलेसे ही आदमीके हिस्सेका अन्न खा जायँगे तो जवान आदमी मारे हुए हैं, तू नहीं भी मारेगा तो भी सब मरेंगे, मैं खाने बिना मरेंगे, बूढ़े आदमीको खिलानेसे कोई जवान तुम्हें केवल निमित्त बनाता हूँ।' मरा है आजतक? सब बेवकूफीकी बात है, बेसमझीकी 'निमित्तमात्रं सव्यसाचिन्।' भव बात है। इतने जंगल हमारे हिन्दुस्तानमें पड़े हैं, लाखों 'ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे।' गायें जंगलोंमें रहकर अपना जीवन-निर्वाह कर सकती भगवान् हमलोगोंको केवल निमित्त बनाते हैं। हैं, घास खाकर जी सकती हैं, इसलिये उन गायोंको निमित्त तो बन जाना चाहिये। करनेवाले तो सब भगवान् हम जंगलोंमें छोड़ दें तो अपनी पूरी आयु पाकर वे हैं। इतना निमित्त बन जाना चाहिये कि गौओंके लिये मरेंगी और चरेंगी जंगलमें। और दूसरी बात यह है कोई भी सवाल उठे तो एक स्वरसे सबके साथ शामिल कि उन गायोंको हम खेतोंमें रखकर चरायें तो आप हो जाना चाहिये। हिन्दुस्तानमें गौओंका वध नहीं होना हिसाब लगाकर देखें गऊसे जो गोबर होता है, उससे चाहिये। महात्मा गांधीने जब स्वराज्य नहीं मिला था, तथा जो गाय मूत्र करती है उससे खेतीकी उपजमें उस समय यह घोषणा की थी। यह बात पहले उठ वृद्धि होती है। गोमूत्रसे खेती अधिक पैदा होती है। चुकी थी कि हिन्दुस्तानमें गायें कटनी बन्द होनी एक मन खाद दी जाती है तो उससे कई मन अनाज चाहिये। उन्होंने कहा कि 'हिन्दुस्तानमें गोहत्या बन्द होनी चाहिये' का सवाल उठाना ठीक है, मेरी भी यही पैदा होता है। चारा, घास और अन्न सब पैदा होता है। गाय जो कुछ खाती है उसके अनुसार स्वयं खाद इच्छा है, मैं स्वराज्यके लिये चेष्टा करता हूँ तो मेरा पैदा कर देती है, तीसरी बात यह है कि भगवान् प्रधान सवाल गायोंके लिये ही है। स्वराज्य अपने हाथमें स्वाभाविक ही वर्षा करते हैं। संसारमें जितने भी आ जाय, उसके बाद मेरी यह इच्छा है कि 'मैं गोहत्याको बन्द कर दुँगा।' सम्भव है आज वे यदि प्राणी हैं, पश्-पक्षी, कीट-पतंग सबके लिये भगवान् सोच-समझकर हिसाब लगा करके वर्षा और अन्न जीवित होते तो शायद अपनी कही हुई बात याद करके गोहत्या बन्द करते। वे तो हैं नहीं, अब किसको कहें? पैदा करते हैं और आवश्यकता होती है तो उससे हिन्दुस्तानमें स्वराज्य पानेका उनका आदेश और उद्देश्य अधिक भी पैदा करते हैं फिर अपनेको क्या चिन्ता है! आज यदि वर्षा न हो तो क्या जलसे खेती करके दोनों था, तो स्वराज्य तो मिल गया, उसकी सिद्धि करनेके लिये हमलोगोंको चेष्टा करनी चाहिये, हमारे हम जी सकते हैं। यह सोचना चाहिये कि संसारमें देशमें गायोंका कटना एकदम बन्द हो जाय इसके लिये जो कुछ काम हो रहा है सब भगवान्की नजरमें हो रहा है, ऐसा सोचकर भगवान्पर इतना तो भरोसा बहुत-से उपाय हैं। पहले तो गायोंकी वृद्धिका उपाय करना ही चाहिये कि जो पैदा करता है वही जिलाता करना चाहिये और गोहत्या बन्द होनी चाहिये। है और समयपर उसे समाप्त करता है। हम बीचमें भगवान् रामके वनवासकालमें राक्षस मनुष्योंको पड़कर उसकी क्यों पंचायत करें। इसलिये हर एक मारकर उनका मांस खा जाते थे, मनुष्योंकी हड्डियोंको देखकर भगवान् रामकी आँखोंमें आँसू आ गये और प्रकारसे हमें गऊकी रक्षा करनी चाहिये। इसमें हमलोगोंको केवल निमित्त बनना है, करनेवाले तो सब भगवान् हैं, उन्होंने भुजा उठाकर यह प्रतिज्ञा की कि पृथ्वीको मेरा किया होता क्या है? भगवान् अर्जुनसे गीतामें राक्षसोंसे हीन कर दूँगा और सब आश्रमोंमें जा-जाकर कहते हैं कि 'हे सव्यसाची अर्जुन! तू निमित्तमात्र हो उन्होंने मुनियोंको सुख दिया था।

गायोंको मदद मिलेगी और जैसे भी हो किसी प्रकारसे निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह। भी गायोंकी सर्वथा सर्वदा मदद करनी चाहिये। गोचरभूमि

गोसेवाकी प्रेरणा

सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥ उस समय ऋषि-मुनियोंको राक्षस लोग खा जाया

संख्या ३]

करते थे और आजकलके मनुष्य ही राक्षस हैं, वे गायोंको खाकर चारों ओर हड्डियोंकी ढेरी लगा रहे

हैं। संसारमें जब ज्यादा अत्याचार होता है तब भगवान्

अवतार लेते हैं अथवा भगवान्के बहुत-से जो भक्त

होते हैं, उनमें वे प्रेरणा करते हैं। इस प्रकार वे वह काम कर लेते हैं तो भगवान्को आना नहीं पड़ता। इसलिये हमलोग ही भगवान्के भक्त बनकर अगर इस

कामको करना चाहें तो भगवान्की मदद पाकर हमलोग भी कर सकते हैं, जैसे अर्जुनने भगवान्की मदद

प्रकार काम तो करनेवाले भगवान् हैं, हमलोग तो केवल निमित्तमात्र ही बनते हैं। अत: कम-से-कम निमित्तमात्र तो बनना ही चाहिये। एक तो हर एक

पाकर युद्धमें असाधारण वीरोंको भी मार डाला। इसी

भाइयोंको अपनी जैसी-जितनी शक्ति हो उसके अनुसार गोचर-भूमि छोड़नी चाहिये। जिसकी यह शक्ति न हो तो घरमें एक-दो गाय रखनी चाहिये। यदि इतनी भी

गऊका ही दूध पीयेंगे, भैंसका नहीं पीयेंगे। इससे भी

शक्ति न हो तो यही प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम

कायम रहे। उसमें तीन-चार हजार रुपया यहाँसे सहायता मिल जाती है, वह वर्षोंसे इसी प्रकार चल

छोड़ना भी बड़ी भारी सेवा है। गायोंको घरमें रखकर उनकी सेवा करना तो एक नम्बर है ही, हर एक प्रकारसे हमको गायोंकी सेवा करनी है। जैसे गऊशाला

है, इसमें अपनी शक्तिके अनुसार सभी भाई लोग मदद करते ही हैं, उसमें और विशेष मदद करनी चाहिये। आजकल ब्राह्मणोंको जो गऊदान किया जाता है, वह

दान देना तो बहुत उत्तम है ही, किंतु यदि कोई ब्राह्मण गऊ लेकर उसका पालन नहीं कर सके और बिक्री कर दे या किसी भी प्रकारसे वह कसाईके हाथमें चली जाय तो वह ब्राह्मण भी नरकमें जायगा और गोदान करनेवाला भी। इसलिये ब्राह्मण उसे अपने घरमें रखकर उसका पालन करें। गऊ-दानकी महिमा शास्त्रोंमें लिखी भरी पड़ी है। ऐसी परिस्थितिमें

आजकलके समयमें यदि किसीको गऊ देना हो तो

गऊशालामें भेज दे। गौशालामें गऊके दूधका अधिक

दाम देना भी गऊकी सेवा है। आजकल बहुत-सी

गऊशालाएँ चन्देसे ही चल रही हैं। एक महात्मा

बहुत उच्चकोटिके थे, उनका नाम था मंगलनाथ। उनके नामसे ऋषीकेशमें एक गऊशाला है। हम सभी

उसके मेम्बर हैं, जिससे किसी भी प्रकार गऊशाला

रही है। उससे गउओंकी सेवा हो रही है और अपनेको दूध मिल रहा है। नहीं तो इकट्ठा इतना दूध कहाँ मिलता। कलकत्तेमें जो भाई लोग रहते हैं,

उनको कलकत्तेमें पिंजरापोल गऊशालाकी सेवा करनी

चाहिये। सभी जगह पिंजरापोल गऊशाला है ही, उसकी सेवा करना भी गऊकी सेवा है। हर एक प्रकारसे दूधकी वृद्धि करनी चाहिये। जो ठाली (ठाठ)

गऊ है, वृद्ध गऊ है उसकी भी सेवा करनी चाहिये। इस विषयमें कितने भाई तो कहते हैं कि गऊशालामें

भाग ८९ जो ठाली गऊ है यानी बुड़ी गऊ है, निकम्मी गौ है तुल्य हो गयी थी। जैसे कोई ईश्वरकी सेवा करे ऐसे उसकी सेवा करनी चाहिये, उनकी वृद्धि करनी चाहिये, गऊकी सेवा कर रहे थे। आखिरमें एक दिन ऐसा हुआ दुधवाली गऊ बेच देनी चाहिये। कितने कहते हैं कि कि वनमें गऊके ऊपर सिंह आकर झपटा, गऊ चिल्लायी, अपने सभी लोगोंको दोनों प्रकारकी गउओंकी सेवा राजा दौडकर गये, देखा तो सिंह गऊके ऊपर आक्रमण करनी चाहिये। कितने कहते हैं कि नया डेयरी-फार्म कर रहा है। राजाने उस सिंहको मारनेके लिये धनुष-खोलना चाहिये, दुधवाली गउओंकी सेवा करनी चाहिये, बाण उठाया, किंतु राजाका धनुष-बाण कुछ भी काम ठाली गऊ अगर मरे तो मर जाय। इस तरहकी नहीं दिया, राजाने सोचा बाण नहीं चला, क्या बात है? आवाज आती है। फिर सिंहने कहा कि 'मैं शिवजीका गण हूँ, मुझे कोई नहीं मार सकता।' राजाने कहा कि 'महाराज! आप इस इन बातोंमें मुझे तो यह बात अच्छी मालूम देती है कि सभी गउओंकी सेवा करनी चाहिये, चाहे जवान गऊको न मारकर मुझे मारें। आपको तो मांस ही चाहिये हो, चाहे बूढ़ी हो। जवानकी सेवा दूधके लिये करनी न? मुझे आप खा लें, गऊको छोड़ दें।' उसने कहा— चाहिये और बुड्डीकी सेवा धर्मके लिये करनी चाहिये। 'राजन्! तुम राजा होकर गऊके बदले अपनेको क्यों दे अपने घरमें जितने मनुष्य होते हैं, कोई बूढ़े और कोई रहे हो? विसष्ठको ऐसी-ऐसी कई गऊ आप दे सकते जवान होते हैं, सबकी सेवा करना अपना कर्तव्य है। हैं। सोचें आप राजा हैं, आपके शरीरका कितना मूल्य बूढ़ोंकी सेवा इसलिये कि उन्होंने हमारी सेवा की है, वे है और इस गऊका कितना मूल्य है?' दिलीपने कहा हमारी सेवा करते-करते बूढ़े हो गये। आजकल लोग कि 'आपका कहना ठीक है, किंतु गौकी रक्षा करना मेरा कहते हैं कि 'बृढे जल्दी-से-जल्दी मर जायँ' यह धर्म है, उसे बचाना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। अपने हमारी भावना, हमारी बुरी नीयत है। हमको तो यह भाव प्राणोंको देकर भी गऊको बचाना चाहिये।' सिंह बोला-'ठीक है, तुम यदि इस प्रकार धर्मका पालन करते हो रखना चाहिये कि 'हमारे बूढे माता-पिता सौ वर्षींतक जीयें।' हमारी भावनासे वे सौ वर्षतक जीयें तो वे जीयेंगे तो तुम सावधान हो जाओ। गऊको छोड़कर मैं तुम्हारे नहीं। हम कह दें कि कल ही मर जायँ, तो मरेंगे नहीं। ऊपर आता हूँ।' यह कहकर जब सिंह झपटनेकी तैयारी अपनी इच्छासे न तो कोई जीयेगा और न कोई मरेगा। करने लगा, तब राजा भगवानुके ध्यानमें मस्त हो गये। पर सिंह झपटता नहीं है। राजाने आँख खोलकर देखा उनके मरनेकी इच्छा करके हमने अपराध कर लिया। तो स्वयं अपराध क्यों करें, हमें तो बढ़िया-से-बढ़िया कि सामने सिंह नहीं है, केवल गाय खड़ी है। गायने इच्छा रखनी चाहिये। सब गौओंकी सेवा होनी चाहिये, कहा—'राजा दिलीप! मैं ही सिंह बनकर तुम्हारी परीक्षा जीवमात्रकी सेवा होनी चाहिये। ले रही थी, मैं तुम्हारे ऊपर खुश हो गयी, तेरी इच्छा राजा दिलीपने गऊकी सेवा करके रघुको प्राप्त पूर्ण हो जायगी, तुम्हारे बहुत बलवान् लड़का पैदा होगा, किया। जिनके नामसे संसारमें रघुवंश प्रसिद्ध है। जिनके जो संसारमें विख्यात होगा।' वंशमें भगवान्ने अवतार लिया। इस दृष्टान्तपर आप सब ध्यान दें-राजा दिलीपने राजा दिलीप गऊकी सेवा कैसे करते थे-गऊ गऊके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दे दी थी। ऐसी बैठती है तो बैठते थे, उठती तो उठते थे, साथमें चलते बहुत-सी कथा पुराणोंमें, शास्त्रोंमें आती है। यह सोच-थे, गऊको घास खिलाकर खुद अन्न खाते थे, गऊको समझकर सभीको गोसेवा एवं गोरक्षाका व्रत लेना जिल्लाक्र जिल्लिक्स है। पुरस्क सम्बेद्ध हैं। जिल्लिक्स हैं। Made With Love by Avinash/Sha

संसारमें सार क्या है? संख्या ३] संसारमें सार क्या है? (स्वामी श्रीचिन्दानन्दजी महाराज 'सिहोरवाले') शास्त्रमें एक वचन मिलता है-एक आदमीके पास एक सोनेकी अँगूठी है। उस अँगूठीको निहाईपर रखकर उसपर हथौड़ा मारा जाय तो यत् सारभूतं तदुपासनीयं क्या होगा? अँगूठीका आकार नष्ट हो जायगा और हंसो यथा क्षीरिमवाम्बुमिश्रात्॥ भाव यह है कि संसारमें जो सार वस्तु हो, मनुष्य हथौड़ेसे पीटा सोनेका टुकड़ा दीख पड़ेगा। वह सोना एक समय ॲंगूठीके रूपमें था, ऐसी केवल स्मृतिमात्र उसीका सेवन करे, अर्थात् पुरुषार्थद्वारा सार वस्तुको प्राप्त करे और असार वस्तुओंमें न फँसे। दृष्टान्त देते हुए रह जायगी। अब उसको एक बर्तनमें रखकर भट्टीपर कहते हैं कि जैसे दूध और पानी मिलाकर हंसको दो चढ़ायेंगे तो वह अँगूठी गलकर एक छोटी सोनेकी गुटिका बन जायगी और तब यह स्मृति भी शेष नहीं तो वह साररूप दूधको ग्रहण करेगा और असार वस्तु पानीको छोड़ देगा, उसी प्रकार मनुष्यको भी करना चाहिये। रहेगी कि वह गुटिका पहले अँगूठीके रूपमें थी। इस अतएव यदि सारको ग्रहण करना है तो संसारमें सारे प्रयोगका सार इतना ही है कि अँगूठी जब उत्पन्न सार वस्तु क्या है-यह जान लेना चाहिये। जिस नहीं हुई थी, उस समय भी सोना तो था ही। पीछे सुनारने उस सोनेसे एक आकृति तैयार की और उस मनुष्यमें विवेक-बुद्धि जाग्रत् नहीं हुई होती, वह तो विषयभोगके साधनोंको ही साररूप मानता है, इस कारण आकृतिका नाम 'अँगूठी' रखा। नाम तो आकृति बननेके सारे जीवनको इन साधनोंके जुटानेमें ही लगा देता है। बाद ही पड़ा। पीछे जब उस आकृतिको नष्ट कर दिया गया, तब उसका नाम भी नष्ट हो गया और सोना भोगसे कभी तृप्ति नहीं होती, बल्कि उससे भोगतृष्णा दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है; परिणाम यह होता है अवशेष रह गया। नरसी मेहताने अपने एक भजनमें यही कि मनुष्य मृत्युकी अन्तिम घड़ीतक विषय-चिन्तनमें ही बात इस प्रकार कही है— लगा रहता है और उसके फलस्वरूप आसुर योनियोंको 'घाट घड़्या पछी नामरूप झूजवाँ, अन्ते तो ही प्राप्त होता है। यह बात हुई उन मनुष्योंकी— हेम नुं हेम होय।' अर्थात् आकृति गढनेके बाद नाम-जो 'कामोपभोगपरम' हैं अर्थात् काम्य वस्तुओंको रूपका अस्तित्व होता है, फिर अन्तमें सोने-का-सोना प्राप्त करके उनका भोग भोगनेमें ही जीवनको सार्थक ही रह जाता है। यही बात दूसरी तरह कहें तो कह समझते हैं। ऐसे मनुष्योंको शास्त्रोंमें पामर और विषयीकी सकते हैं कि पहले सोना था, पीछे उसने एक रूप धारण संज्ञा दी गयी है। किया और उस रूपका नाम अँगूठी रखा गया। फिर सोनेने अपनी उस आकृतिको अपनेमें समेट लिया और परंतु जो मुमुक्ष पुरुष हैं, वे इस बातको जानते हैं कि भोग-पदार्थ दु:खयोनि और आगमापायी हैं, अत: इस प्रकार नाम-रूप दोनोंका नाश हो गया और सोना उनसे कोई सच्चा और स्थायी सुख नहीं मिलता। इससे फिर अपने मूल स्वरूपमें आ गया। वे लोग विषयोंको विषवत् त्याग देते हैं और संसारमें अब अँगूठीके विषयपर फिर आइये। अँगूठीमेंसे साररूप क्या है—इसका विचार करते हैं। सारे संसारका सोना निकाल लें तो क्या बच रहेगा? यह हम पहले सार खोजना तो एक बहुत व्यापक प्रश्न है; इसलिये ही कह चुके हैं कि सोनेने ही नाम-रूप धारण किया पहले छोटे-छोटे परिचित उदाहरणोंको देखें, जिससे मूल था, इसलिये अँगूठीमेंसे सोना निकाल लेनेपर कुछ भी बाकी नहीं रह जाता; क्योंकि नाम और रूप दोनों ही प्रश्नका समझना सहज हो जाय।

भाग ८९ सोनेमें कल्पित थे। रहेगा। रहेंगे तो वे सूतके तार ही रहेंगे और वस्त्रका कोई परंतु अँगूठीमेंसे सोना प्रत्यक्षरूपमें निकाला नहीं नाम-निशान भी न रहेगा। सूतके तारोंने एक साथ जा सकता, अतएव इसको समझनेके लिये सूक्ष्म रीतिसे मिलकर जो वस्त्रका आकार धारण किया था, वह विचार करना पड़ता है। अत: इससे एक और स्थूल आकार तारोंके अलग-अलग हो जानेसे नष्ट हो गया। प्रकारान्तरसे कह सकते हैं कि वस्त्रके उत्पन्न होनेके दृष्टान्त लीजिये। एक मिट्टीका घड़ा लीजिये। वह घड़ा और कोई पहले सूत था। उस सूतके तारोंको व्यवस्थित रीतिसे वस्तु ही नहीं है, केवल मिट्टीके द्वारा धारण की गयी मिलानेसे वस्त्र बना और फिर उन तारोंको अलग-अलग एक विशेष आकृति है और उस आकृतिको मिट्टीकी कर देनेसे वस्त्रका नाश हो गया। दूसरी आकृतिसे पृथक् दिखलानेके लिये उसको 'घड़ा' अब तीनों दृष्टान्तोंको साथ लेकर देखिये। अँगूठीमें नाममात्र दिया जाता है। यह घडा कच्चा है, अर्थात् मानो सोना साररूप था; क्योंकि अँगूठीका आकार और इसकी आकृति अवाँमें पकायी नहीं गयी। अब पानीसे 'अँगूठी' नाम तो नाशवान् ही है, इस कारण वहाँ भरा एक बड़ा बर्तन लीजिये और इस घड़ेको उसमें डुबा साररूप कुछ है तो वह सोना ही है। इसी प्रकार घड़ेके दीजिये। एक-आध घण्टेके बाद देखिये तो वह घड़ा दृष्टान्तमें भी मिट्टी साररूप है; क्योंकि आकृति और दिखायी नहीं पड़ेगा। घड़ेकी मिट्टी पानीमें गल गयी, उसका नाम तो नाशको प्राप्त होता है, पर मिट्टी ज्यों-इससे घडेकी आकृति नष्ट हो गयी और जब आकृति की-त्यों रहती है। वस्त्रके दृष्टान्तमें नाम और रूप नष्ट हो गयी, तब 'घड़ा' नाम किसको दिया जाय? नाशको प्राप्त होते हैं, परंतु सूत तो ज्यों-का-त्यों रहता है। अतएव अँगूठीका आधार सोना है, घड़ेका आधार इसलिये घडेकी मिट्टी निकाल लीजिये तो नाम-रूप दोनोंका नाश हो जाता है और मिट्टी अवशेष रह जाती मिट्टी है और वस्त्रका आधार सूत है। अथवा अँगूठी है और घडेकी आकृति बननेसे पूर्व मिट्टी तो थी ही। सोनेके सिवा और कुछ नहीं है, घडा मिट्टीके सिवा और मध्यमें मिट्टीने एक आकार धारण किया, जिसको हमने कुछ नहीं है और वस्त्र सूतके सिवा और कुछ नहीं है; 'घड़ा' नाम दिया। फिर पीछे उस घड़ेको पानीमें क्योंकि उनकी उत्पत्ति सोने, मिट्टी और सूतसे ही क्रमश: डालनेपर मिट्टी गल गयी और नाम-रूप नष्ट हो गये होती है। जिससे जो वस्तु उत्पन्न होती है, उसको तथा मिट्टी बर्तनकी पेंदीमें बैठ गयी। उसका उपादान कारण कहते हैं; अतएव अँगूठीका अब यहाँ भी हम घड़ेमेंसे मिट्टीको प्रत्यक्ष रूपमें उपादान कारण सोना है, घड़ेका मिट्टी है और वस्त्रका नहीं ले सकते, इसलिये मिट्टी पानीमें गल गयी-यह सूत है और इस कारण उनमें साररूपमें सोना, मिट्टी और बात बुद्धिके सहारे समझनी पडती है। अत: अब एक सृत है। नाम और रूप कल्पित होनेके कारण नष्ट हो तीसरा दृष्टान्त लीजिये, जिसमें बुद्धिकी कुछ भी सहायता जाते हैं। यहाँ एक ही बातको अनेक प्रकारसे बहुत बार न लेनी पड़े और सारी बात प्रत्यक्ष समझमें आ जाय। कहा गया है, यह बोधकी दृढ्ताके लिये आवश्यक समझकर कहा गया है। इसमें पुनरुक्तिका दोष नहीं माना एक वस्त्रका टुकड़ा लीजिये। अब यह पता लगाइये कि वह किस प्रकार बना है। रूईसे सूत बना जाता। इसके समर्थनमें वेदान्तसूत्र कहता है— **'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्।'** अर्थात् उपदेशको हृदयमें और सूतको बुननेसे वस्त्र बना। अब इस वस्त्रमेंसे एक-दृढ़ होनेके लिये एक ही बात बारम्बार समझायी जाती एक करके सूतके तारोंको निकालते जाइये। सब तारोंको

निकाल लेंगे, तब क्या बाकी रहेगा? कुछ भी बाकी न

है। वसिष्ठऋषिने भी श्रीभगवान् रघुनाथजीसे कहा है—

ख्या ३] संसारमें सार क्या है ?					
<u> </u>	<u> </u>				
भूयो निपुणबोधाय शृणु किंचिद् रघूद्वह।	इसी प्रकार सृष्टिके उत्पन्न होनेके पहले एक				
पुनः पुनर्यत् कथितं तदज्ञेऽप्यवतिष्ठते॥	परमात्मा ही था। उसको एकसे अनेक रूप होकर रमण				
'बोधकी विशेष दृढ़ताके लिये एक बार फिर	करनेकी इच्छा हुई और इसलिये उसने अपने ही भीतरसे				
कहता हूँ, सावधान होकर सुनो; क्योंकि एक ही बात	इस संसारकी रचना की। 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'—				
अनेक प्रकारोंसे कही जाती है तो उससे मन्द बुद्धिवालेको	अर्थात् अपनेमेंसे जगत्को रचकर उसमें स्वयं जीवरूपसे				
भी बोध हो जाता है।'	प्रवेश किया। अतएव यह निश्चित हो गया कि परमात्मा				
हमने जिस बातको इतना विस्तारपूर्वक कहा है,	इस सृष्टिका उपादान कारण है; क्योंकि हम पहले देख				
उसीको श्रीगौडपादाचार्यने एक ही श्लोकमें समझाया है—	चुके हैं कि जिसमेंसे जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह				
आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।	उसका उपादान-कारण होती है।				
वितथैः सदूशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः॥	अब यहाँ यह विचारनेकी बात है कि अँगूठी बनानेमें				
भाव यह है कि नाम और रूप जैसे वस्तुकी	सोना और सुनार—इन दोनोंकी जरूरत पड़ती है, घड़ा				
उत्पत्तिके पूर्व नहीं होते, वैसे ही वस्तुका नाश होनेपर	बनानेके लिये मिट्टी और कुम्भकार दोनों चाहिये तथा				
भी नहीं रहते। वे मध्यकालमें दीखते हैं, तो भी उनको	वस्त्रके लिये सूत और जुलाहा दोनों चाहिये। अत: जिससे				
मिथ्या ही जानो।'अँगूठी'नाम और उसका रूप सुनारके	जो वस्तु बनती है, वह उसका उपादान-कारण तथा जो				
द्वारा गढ़े जानेके पूर्व नहीं थे, बीचमें दिखायी दिये हैं	बनाता है, वह निमित्त-कारण कहलाता है। यहाँ इस				
और अँगूठीको गला देनेके बाद वे अदृश्य हो गये।	सृष्टिकी रचनामें यदि ईश्वरको उपादान-कारण मानें तो				
इसलिये बीचमें जो अँगूठी नाम और उसकी आकृति दीख	फिर निमित्त-कारण क्या है? उसका भी पता लगाना				
पड़ते हैं, उनको मिथ्या समझना चाहिये; क्योंकि उनमें	चाहिये। इसका स्पष्टीकरण यह है कि ईश्वर स्वयं ही				
स्वर्ण ही सत्य है। और भी स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते	उपादान–कारण और निमित्त–कारण दोनों है। जैसे मकड़ी				
हैं कि वस्तु मध्यमें सत्य-सी दीख पड़ती है, क्योंकि हम	अपने शरीरमेंसे लार निकालकर जाला बनाती है, अतएव				
उसका उपयोग करते हैं; परंतु तात्त्विक दृष्टिसे वह सत्य	उसका निमित्त और उपादान दोनों कारण मकड़ी ही होती				
नहीं बल्कि कल्पित होनेके कारण मिथ्या है, अर्थात्	है, उसी प्रकार ईश्वर भी जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान				
केवल व्यवहार-कालमें प्रतीत होती है, इसीलिये उसकी	कारण है। अर्थात् उपादान भी स्वयं ही है और				
पारमार्थिक सत्ता नहीं है। दृष्टान्त देकर और भी समझाते	उपादानमेंसे सृष्टि रचनेवाला भी वह स्वयं ही है।				
हुए वे कहते हैं—	हम पहले सिद्ध कर चुके हैं कि किसी भी वस्तुमें				
स्वप्नमाये यथा दृष्टे गन्धर्वनगरं यथा।	साररूप तो उसका उपादान–कारण ही होता है, उपादान–				
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणै:॥	कारणसे कार्यकी भिन्न सत्ता नहीं होती। जैसे अँगूठीमें				
अर्थात् स्वप्नके पदार्थ, इन्द्रजालका खेल, बादलोंमें	सोना, घड़ेमें मिट्टी तथा वस्त्रमें सूत ही सार है, वैसे ही				
दीखनेवाला गन्धर्वनगर तथा दूसरी अनेकों आकृतियाँ	इस संसारमें साररूप इसका उपादान–कारण ही होना				
जैसे दीखती हैं, तथापि मिथ्या ही होती हैं, केवल	चाहिये और वह है ईश्वर या परमात्मा। जैसे वस्तुमेंसे				
देखने-मात्रको होती हैं; उसी प्रकार यह नाम-रूपात्मक	उपादान निकाल लेनेपर कुछ भी शेष नहीं रहता, उसी				
विश्व-प्रपंच जो दीख पड़ता है, मिथ्या ही है—ऐसा	प्रकार संसारमेंसे यदि ईश्वरको हटा दिया जाय तो संसार				
तत्त्वज्ञानी समझते हैं।	नहीं रह सकता।				

भाग ८९ अब ईश्वर ही जगत्का उपादान-कारण है, इसका इसलिये ईश्वरको खोजनेके लिये कहीं बाहर दौडनेकी प्रमाण देखिये। गीतामें श्रीभगवान् कहते हैं-जरूरत नहीं। हृदयको शुद्ध करनेसे वहीं उनका दर्शन हो जायगा। 'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।' अर्थात् इस समस्त जगत्में मैं अव्यक्तरूपसे व्याप्त श्रीअष्टावक्रमुनि कहते हैं— हूँ। जैसे अँगूठीमें सोना अथवा घड़ेमें मिट्टी व्याप्त होकर यथैवादर्शमध्यस्थे रूपेऽन्तः परितस्तु सः।

रहती है, वैसे ही ईश्वर जगत्में व्याप्त रहता है। यहाँ कदाचित् अर्जुन प्रश्न करें कि 'महाराज! आप तो रथमें यहाँ मेरे सामने बैठे हैं और फिर कहते हैं कि मैं सारे जगत्में व्याप्त हो रहा हूँ; -- यह कैसे हो सकता है?' इसीलिये भगवान् पहलेसे ही कह रहे हैं-'मया

अव्यक्तमूर्तिना।' मैं इस अवतार-स्वरूपसे तो तुम्हारा रथ हाँकता हूँ - यह ठीक है; परंतु मेरा जो मूल सर्वव्यापक स्वरूप है, जो इन्द्रियोंसे अगोचर है, उस स्वरूपसे मैं सर्व जगत्में व्याप्त हो रहा हूँ। फिर दूसरे प्रसंगमें श्रीभगवान् कहते हैं-

'मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय।' अर्थात् हे अर्जुन! जैसे अँगुठी सोनेसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार मुझसे भिन्न इस संसारमें कोई पदार्थ नहीं है। अर्थात् मैं ही इस जगत्रूपमें दृष्टिगोचर हो रहा हूँ। इस जगत्का उपादान-कारण मैं ही हूँ।

इसलिये मेरे सिवा जगत् दूसरा कुछ नहीं है। ब्राह्मण लोग प्रतिदिन भगवान् शंकरकी पूजा करके आरती उतारते समय गाते हैं-

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं

भुजगेन्द्रहारम्।

सदा वसन्तं हृदयारविन्दे

यहाँ शंकरजीका एक विशेषण 'संसारसार' भी है। अर्थात् इस संसारमें कुछ साररूप है तो वह एक ईश्वर

भवं भवानीसहितं नमामि॥

ही है; क्योंकि उसके सिवा जगत् कोई वस्तु नहीं। अब इस साररूप वस्तुको खोजें कहाँ? ऐसा किसी भक्तके मनमें प्रश्न हो तो कहते हैं—'सदा वसन्तं हृदयारविन्दे।'

तथैवास्मिन् शरीरेऽन्तः परितः परमेश्वरः॥ जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्बित हुए रूपके भीतर और बाहर चारों ओर दर्पणका काच ही रहता है, उसके

सिवा दूसरा कुछ भी नहीं होता, इसी प्रकार इस शरीरमें भी, इस जगतुमें भी अन्दर और बाहर, चारों ओर एकमात्र परमेश्वर ही है, उसके सिवा दूसरा कुछ भी

नहीं है। इस प्रकार ईश्वर सर्वव्यापक है, अतएव वह कहीं नहीं है—यह कहना ही नहीं बनता। स्वर्ण जैसे अँगूठीमें है, वैसे ही ईश्वर जगत्में है। इस कारण यदि स्वर्णके बिना अँगूठीका अस्तित्व रह सकता हो तो ईश्वरके बिना जगत्का भी अस्तित्व रह सकता है।

ऊपर जो बात श्रीअष्टावक्रम्निने सुन्दर दुष्टान्तके द्वारा समझायी है, उसी प्रसंगको श्रीवसिष्ठऋषिने एक नाटकके रूपकसे श्रीरामचन्द्रजीको समझाया है; उसका उल्लेख करके निबन्ध समाप्त करूँगा। अस्मिन् विकारवलिते नियतेर्विलासे

> संसारनाम्नि चिरनाटकनाट्यसारे। साक्षी सदोदितवपुः परमेश्वरोऽयं एकः स्थितो न च तया न च तेन भिन्नः॥ अनेकों विकारोंसे भरे हुए, नियतिरूपी नटीके

विलासोंसे युक्त इस संसार नामक अनादि महानाटकमें सर्वदा प्रकाशमान यह प्रत्यगात्मारूप एक राजा ही देखनेवाला है। वस्तुत: देखनेमें यह राजा नटीसे तथा

नाटकसे भिन्न नहीं है। द्रष्टा पुरुष दर्शन और दृश्यसे अभिन्न ही है। इसलिये इस संसारमें कोई साररूप है तो वह एक

परमेश्वर है, दूसरा कुछ नहीं। जो दिखलायी देता है, अर्थात्वपाशेमान्ने इहरयक्ष प्रहामें इनका विद्याप्त है dha क्षेत्र के किस्सी हिस्सी माना के किस्सी है winash/Sha

भगवानुमें मन कैसे लगे? संख्या ३] भगवान्में मन कैसे लगे ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) है, उससे कहीं भी, किसीको भी आत्मतृप्ति नहीं होती निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः। है। संतोष नहीं होता है; क्योंकि वह अपूर्णता निरन्तर द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥ सामने रहती है, अनित्यता निरन्तर सामने रहती है। जो (गीता १५।५) अविनाशी परमपदको कौन प्राप्त करता है, यह वस्तु मिली है, वह अपूर्ण है और यह हमेशा रहेगी नहीं भगवान् उपर्युक्त श्लोकमें बताते हैं। निर्मानमोहा—जो तथा वह मनोनुकूल मिलती नहीं है। इसलिये विषयासिक मान-मोहसे रहित हो। जितसंगदोषा—जिसने आसक्तिके निरन्तर ही चित्तको विषयोंमें लगाये रहती है। विषयासक्तिसे दोषको जीत लिया हो। जिसमें विषयोंकी आसक्ति न कामना पैदा होती है। कामनासे अगले सारे दोष पैदा हो। विषयासक्ति जहाँपर है, वहींपर बन्धन है। यही होते हैं। इसलिये विषयोंकी आसक्तिपर जबतक विजय आसक्ति भगवान्में हो जाय तो उसका नाम प्रेम है और नहीं प्राप्त होती है, तबतक भगवान्में आसक्ति नहीं होती यही आसक्ति विषयोंमें हो जाय तो उसका नाम मोह है। है और भगवान्में आसक्ति हुए बिना विषयासक्ति जाती जबतक आसक्ति विषयोंमें रहती है तबतक कामना पैदा नहीं है। होती ही रहती है और जबतक कामना होती रहती है भगवान्में आसक्ति करनेका, भगवान्में प्रीति करनेका, तबतक कामनासे होनेवाले जो दोष हैं, वे सब भी बने भगवान्में चित्त किसी प्रकारसे जाकर जुड़ जाय, रहते हैं। इसलिये विषयोंके बदलेमें भगवान्में आसक्ति भगवान्में फँस जाय। इस प्रकारकी चेष्टाका नाम साधना बढाये। कहींपर भी आसक्ति रहे नहीं, संसारकी सत्ता है। भगवान्की लीलाओंके, गुणोंके गानसे उनमें चित्त ब्रह्मकी सत्तामें विलीन हो जाय। यदि आसिक्त रहे तो रमता है। भगवानुके नामसे चित्तशुद्धि होनेपर चित्त केवल भगवान्के चरणारविन्दमें, भगवान्के रूप, गुण, भगवान्में रमता है। भगवान्के लिये कामना छोड़कर यश, कीर्ति और भगवान्के सौन्दर्य-माधुर्यमें रहे। तब सेवाभावसे कर्म करनेपर चित्त भगवान्में लगता है। यह आसक्ति विषयासक्तिका नाश कर देती है। विषयासक्ति भगवानुके परम तत्त्वका आभास मिल जानेपर चित्त और भगवदासिक्तमें बड़ा अन्तर है। विषयासिक्त पग-भगवान्में रमता है। ये कई उपाय हैं। जिस किसी भी पगपर मनको विषयोंकी खोजमें ही लगाये रहती है। उपायसे चित्त भगवान्में रम जाय और जगत्से हट जाय उसके द्वारा रात-दिन और स्वप्नमें भी विषयोंका ही यह चेष्टा करनी है। चिन्तन होता है। इन दोनोंमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है— जिनका जगत्से चित्त हटा, जगत्के पदार्थोंमें चित्त नहीं लगता, नहीं फँसता है, ऐसे जो संगरहित लोग हैं— विषय-चिन्तनसे आसिक बढ़ती है और विषयासिकसे विषय-चिन्तन बढ़ता है और इसका कोई अन्त नहीं है। वे दिव्य अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। अध्यात्मनित्या— प्रकृतिके विस्तारका कोई अन्त नहीं है। इसलिये जिसका मन नित्य-नित्य भगवान्में लगा रहे। ऐसा होता विषयोंकी प्राप्तिसे विषय-कामना छूट जाय ऐसा नहीं है कि जो वस्तु प्रिय होती है, उसमें मन लगता है अथवा होता है; क्योंकि जितना विषयोंका प्राप्त होना है, उतना जो वस्तु आवश्यक होती है, उसमें मन लगता है या ही अधिक विषयोंकी इच्छा होना है। इनमें कहीं भी जहाँ भय होता है, वहाँ मन लगता है। तीन तरहसे मन तुप्ति नहीं होती है। लगता है—भयसे, आवश्यकतासे और प्रीतिसे। इनमें जो चीज अनित्य है, अपूर्ण है और परिवर्तनशील उत्तरोत्तर उत्तम है। कंसको भय हुआ। उसे रात-दिन

भाग ८९ भगवान् श्रीकृष्णसे आशंका हो गयी कि अभी आये और वह किसी वस्तुको चाहती नहीं है। अभी मार देंगे तो वह सोते-सोते भी जाग उठता था और अरबीमें जो लैला-मजनूका इतिहास है, उसे गन्दी दौडने लगता था कि आ गये। इसलिये उसका मन मिसाल मानते हैं, परंतु उसको देखा जाय तो ऐसी बात निरन्तर भगवान्में लगा रहता था। आवश्यकतासे मन नहीं है। मैं एक दिन उसे देख रहा था तो मुझे मालूम लगता है जैसे अगर प्यास लग गयी तो जलकी स्मृति हुआ कि श्रीराधाजी तो वहाँ मजनू बने हैं और श्रीकृष्ण करानी नहीं पड़ती है। प्यास अपने-आप स्मृति कराये ही लैला हैं। मजनू गौर वर्ण थे और लैला बड़ी साँवली रखती है। भूलनेकी चेष्टा करनेपर भी वह भूल नहीं थी। ऐसा वर्णन आता है। लैला राजपुत्री थी और मजनू सकता; क्योंकि प्यासके कारण मन व्याकुल है। इसलिये एक बड़े गरीब घरका लड़का था। मजनू कभी मिलना आवश्यकता होनेपर स्मृति रहती है। और तीसरी बात नहीं चाहता था, मिला नहीं और लैला सुनती थी, परंतु है प्रीति। जो सबसे उत्तम है। प्रीति हो जानेपर वह वस्तु कभी मिलनेकी चेष्टा नहीं की। उनका प्रेम पवित्र तथा भुलायी नहीं जाती है। हमलोग जो कहते हैं कि अमुकसे निरुत्तर रहा। अन्तिम बात जो बहुत सुन्दर है वह है हमारी प्रीति है, भगवान्से प्रेम है—यह वास्तविक नहीं मजनूकी मृत्यु हो गयी तो उसके आसपासके लोग उसे है। जिसमें वास्तविक प्रेम होता है, वह भुलाया नहीं कब्रगाहमें ले गये और वहाँ उसे दफना दिया गया। वह जाता है। अनजानमें भी उसकी स्मृति बनी रहती है। वह कोई राजाका लड़का तो था नहीं। यह बात जब लैलाको याद करनेके लिये करता हो ऐसा नहीं होता है। मालूम हुई, लैला अपने पिताकी अत्यन्त प्रिय पुत्री थी। भगवानुको याद रखनेके लिये याद करनेका अभ्यास वह इतनी प्रिय थी कि उसकी कही हुई कोई बात उसके करें, ऐसा प्रीतिमें नहीं होता है। स्वाभाविक ही उनका पिता टालते नहीं थे। वह जो कह दे, वे स्वीकार करते। मन वहाँ लगा रहता है और जब मनकी तरफ देखता जब लैलाने यह बात सुनी कि मजनूकी मृत्यु हो गयी है तो पता चला कि मन तो वहाँ लगा है। दूसरी चीजका और उसे दफना दिया गया तो उसने पिताको कहलाया ध्यान करने लगता है, पढ़ता है, लिखता है तो लगता कि मैं एकबार मजनूकी कब्र देखना चाहती हूँ। पिताने स्वीकार कर लिया, परंतु कहा—तुम राजपुत्री हो, है मन तो वहाँ गया है, मन यहाँ है ही नहीं। जहाँ किसी वस्तुमें प्रीति होती है तो वहाँ मन अपने-आप लगता है। इसलिये वहाँ अकेले नहीं जाओगी। मैं, तुम्हारी माँ, प्रीति पवित्र होती है। प्रीतिमें वस्तुको प्राप्त करनेकी दीवान, मन्त्रिमण्डल और सेना भी साथ जायगी। इसे अपेक्षा वह प्रीति अधिक महत्त्वकी वस्तु होती है। लैलाने स्वीकार कर लिया और कहा कि साथमें उन यह समझनेकी बात है कि जो प्रीति या प्रेम किसी गरीबोंकी टोली भी जायगी। तब आगे-आगे गरीबोंका वस्तुको प्राप्त कराकर सुखी कर दे, वह वास्तविक प्रीति दल चला, उनके पीछे लैला चली, उसके बाद लैलाके नहीं है; क्योंकि जो वस्तुकी प्राप्तिसे सुख हो गया तो माता-पिता फिर सारा राजमण्डल, फिर सेना चली। वहाँ वह प्रीति उस रूपमें नहीं रही। वस्तु प्राप्त हो गयी। पहुँचकर लैला मजनूकी कब्रगाहके पास खड़ी हो गयी। खड़ी होकर बोली—ऐ खुदा! यदि कोई खुदा है तो मैं वस्तुकी प्राप्तिके लिये होनेवाली प्रीति वस्तुतक सीमित यह कहती हूँ कि यदि मेरे मनमें मजनूको छोड़कर दूसरे है। वस्तुसे आगे नहीं है, परंतु जो वास्तविक प्रीति है, वह नित्य नवायमान रहती है। प्रतिक्षण वर्द्धमान रहती किसीकी कल्पना न आयी हो और मैंने कभी किसी है; क्योंकि प्रीतिका यह स्वभाव ही है कि किसी वस्तुसे प्रकारका भोग-सुख न चाहा हो तो मजनूकी कब्र फट उसका विराम नहीं होता है। प्रीति रुकती नहीं है और जाय और मुझको अपनेमें ले ले। फिर सबके देखते-

संख्या ३] क्किक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक		
- देखते कब्र फट गयी और लैला मजनूके शवसे लिपट		
गयी। कब्र बन्द हो गयी और आकाशवाणी हुई कि यदि	नि:स्वार्थ प्रीतिका प्रारम्भ होता है, वहींपर स्मृति अखण्ड	
इस कब्रको कोई खोदेगा तो वह तत्काल नष्ट हो	होने लगती है। जहाँ-जहाँ प्रीतिमें कोई स्वार्थ है, वहाँ-	
जायगा, मारा जायगा। सभी लोग वहाँसे लौट आये। यह	वहाँपर तो वह स्वार्थ आकरके प्रीतिको भुलाता है।	
प्रीति है। जहाँ प्रीतिमें चाह है और जहाँ किसी वस्तुको	स्वार्थ आ जाता है कि इस प्रीतिसे अमुक चीज प्राप्त	
प्राप्त करके प्रीति शमित हो जाती है, दब जाती है, उसमें	करनी है। चूँकि चीज प्राप्त करनी है इसलिये जितने	
समा जाती है, रुक जाती है अथवा मिट जाती है—वह	समय वह चीज याद रहेगी, उतने समयतक प्रीति नहीं	
प्रीति नहीं है। इसीलिये भगवत्प्रेम इतना ऊँचा है।	रहेगी। वह वस्तु चाहे भगवान् ही हो। भगवान्को भी	
इसीलिये इसको भक्ति-सम्प्रदायके दार्शनिकोंने, भावुकोंने	प्राप्त करनेकी इच्छासे भी बढ़कर भगवान्से प्रीतिकी	
पंचम पुरुषार्थ माना है। जहाँपर मोक्षकी इच्छा भी मिट	इच्छा है। भगवान्की प्राप्ति तो प्रीतिवालेको निरन्तर है	
जाती है; क्योंकि मोक्षकी इच्छामें भी अपने बन्धनका	ही; क्योंकि उसके मनसे भगवान् कभी जा नहीं सकते	
भान है और बन्धनसे छुटकारेकी इच्छा है। अगर	हैं। भगवान्में यह शक्ति नहीं है कि वह प्रेमी हृदयका	
छुटकारेकी इच्छा न हो तो मोक्षकी इच्छाका क्या अर्थ	परित्याग करके कहीं जा सकें। प्रेमी जो निष्काम,	
है। मोक्ष अर्थात् छुटकारा, छूट जाना। बन्धनका भान	निश्छल हृदय है, वह भगवान्को नित्य बाँधे रखता है।	
हुए बिना मुक्तिकी इच्छा नहीं होती है और बन्धनका	भगवान् वहाँसे जाते हैं, जब दूसरा कोई आ जाता है।	
भान किसी व्यक्तिको होता है। उसे बन्धनमें दु:ख है	कोई स्वार्थ आ गया, कोई काम आ गया, कोई वस्तु	
तभी वह छुटकारा चाहता है। मुक्तिकी इच्छामें अपने	आ गयी तो वहाँसे भगवान् निकल जाते हैं और जहाँ	
दुःखसे छुटकारा पानेकी इच्छा है। चाहे वह आत्यन्तिक	निष्कपट, निश्छल और निर्हेतुक प्रेम है, वहाँसे भगवान्	
दुःख ही हो। ऐसा कहते हैं कि मुक्तिप्राप्तिसे सारे	जा नहीं सकते हैं। भगवान् वहाँ बँध जाते हैं।	
दुःखोंका सदाके लिये अवसान हो जाता है। इसीलिये	भगवान्को बाँधनेकी कोई भी यदि डोरी है, साधना है	
मुक्ति चाहनेवाला यह चाहता है कि मेरे सारे दु:खोंका	तो केवल प्रीतिकी, प्रेमकी डोरी है और किसीसे भी	
सदाके लिये अवसान हो जाय। उसकी बड़ी भारी अहंके	भगवान् बँधते नहीं हैं।	
मंगलकी कामना है। इससे भी ऊँचा जहाँ अहम् सर्वथा	ज्ञानमें भगवान् उस ज्ञानके जाननेवालेको लुप्त कर	
दूसरे किसीके सुखमें विलीन हो जाय। दूसरे किसीके	देते हैं, इसलिये बँधनेका सवाल नहीं रहता है और जहाँ	
सुखका स्वरूप बन जाय और अपनी स्थिति ही न रहे।	अज्ञान है, वहाँ कोई भगवान्को बाँधना चाहता नहीं है।	
इसका नाम प्रेम है।	प्रेममें भगवान् रहते हैं और ज्ञानपूर्वक रहते हैं। भगवान्	
जहाँ हम छोटी-छोटी कामनाओंको, गन्दे कामोंको	वहाँसे कहीं जा नहीं सकते हैं। इसलिये भगवान्की	
प्रेमका रूप समझ लेते हैं—यह तो हमारे समझनेकी	प्राप्तिकी अपेक्षा भी भगवान्की प्रीतिका प्रेमियोंकी	
गलती है। वह तो इतना ऊँचा है कि जहाँतक बहुतोंकी	दृष्टिमें अधिक महत्त्व है। वे प्राप्त होनेका विरोध नहीं	
तो दृष्टि ही नहीं जाती है। इस प्रकारकी प्रीति जहाँ	करते हैं और प्राप्त होनेमें उन्हें बड़ी प्रसन्नता है। वे	
होती है वह तो चरम अवस्था है, परंतु इस प्रीतिका	चाहते भी हैं, परंतु प्राप्त होनेपर यदि भगवान्में प्रीति	
अभ्यास जहाँसे आरम्भ होता है, वहाँपर स्मृति नित्य बन	कहीं किसी भी प्रकारसे कम होती हो तो वह प्रेमी चाहते	
जाती है।	हैं कि भगवान् चाहे न मिलें, परंतु हमारी यह प्रीति	

निरन्तर अक्षुण्ण बनी रहे। यह कभी घटे नहीं। इस परम प्रीति जहाँ जाग्रत् हो जाती है, वहाँ कामना

प्रीतिकी जहाँ प्रारम्भिक स्थिति है निष्काम, अहैतुक प्रीतिकी इसमें स्मृतिका लोप नहीं होता है। जहाँ इस प्रीतिके मार्गपर आये वहाँ विस्मरण नहीं होगा।

जगत् इस बातको जानता नहीं है, इसलिये इस

प्रकारके प्रेमियोंके हृदयको जगत् समझ नहीं सकता है। जगत्की आँखें उन आँखोंसे जगत्को देख नहीं सकती हैं। भगवानुको देख नहीं सकती हैं। गोपीकी आँख,

राधाकी आँख जिस प्रकार भगवान्को देखती है, उस

प्रकारकी आँख तो है नहीं और उस प्रकारकी आँखको समझनेकी शक्ति भी हममें नहीं है। इसलिये हम अपनी आँखोंसे राधाकी आँखको मिलाकर देखते हैं तो हमें वह ठीक नहीं मालूम देती है; क्योंकि दोष तो हमारी आँखोंमें ही है।

विमल पन्थ

सेवक श्रीहरि के जो भक्त हैं, शीलवन्त-गुणवन्त।

अपने सहज स्वरूप में, लीन करें श्रीकन्त॥ सरल-विमल मन रामजी, करते प्रेम प्रदान। उनके कृपा-प्रसाद से, शठ बनते मतिमान॥

करतलगत आशीष से, हरि हरते सन्ताप।

दोष दुःख द्रुत भागते, जीव बनें निष्पाप॥ उल्लंघन जो भी करें, हिर के वचन अमोघ।

परित्याग, पूर्ण त्यागकी नींवपर प्रीतिका महल खड़ा होता है। जरा भी जहाँ त्यागकी कमी है, वहाँ वह महल ढह जायगा। प्रेमका महल काममें रहता नहीं है। जहाँपर

नहीं रहती है। परम प्रीति और कामनामें बडा वैर है।

प्रीति और कामना दोनों साथ नहीं रह सकती हैं। सर्वथा

प्रेम है, वास्तविक प्रीति है, वहाँपर स्मृति बराबर बनी रहती है। भगवान्की स्मृतिके लिये, नित्य भगवान्में मन लगा रहनेके लिये अध्यात्मनित्या बने। मन नित्य

भगवानुमें लगा रहे इसके लिये आवश्यकता है प्रीतिकी। अभ्याससे भी मन लगता है परंतु अभ्यास जबतक प्रीति उत्पन्न नहीं करता है तबतक प्रीतिवाली कोई चीज आ जानेपर अभ्यास छूट जाता है। श्रद्धापूर्वक दीर्घ अभ्यास होनेपर अभ्यास प्रीति उत्पन्न कर देता है।

(श्रीमृदुलमोहनजी अवधिया) राजाओं के मुकुटमणि, राजेश्वर श्रीराम। अखिल लोक उनको करे, शत शत कोटि प्रणाम॥

श्री रघुवीर समर्थ हैं, सर्वजयी अविराम। हुए, पवनपुत्र बलधाम॥ जो बनते हैं स्वयंभू, अहमिति के अवतार।

> जन्म बिताते हैं विपुल, पा न सकें उद्धार॥ नास्तिक बन बढ़ते रहें, उनका पतन महान्। विधिवश मित भ्रम में फँसें, कैसे हो कल्याण?

भजन हीन कल्याण की, आशा है निर्मूल। बिना ध्यान रघुनाथ में, दुर्लभ पद की धूल॥

जीवन होवे धन्य तब, जागे पद-अनुरक्ति। ᡨᠬᠮᠩᠯᠮᡛᠬᢃᠪᢎᢆᡶoᠮᠯᠮ᠑er᠈ᠯᡛᠮᠮᡕᡟᢩᡷᢆs:᠉ᡛᢃcᡷᢔᡀᠰᡰaᠮᠷᢆaᢇᡰ᠂ᠩᡬᢩᠻᡚᡓᢦᢦᠬ᠇ᠯᠬ᠘ᡃᡛᠮᢤᡓ᠊ᠮᢐᡳ᠈ᡯᡐᠬaᢆᡷᠻᠡᠯᠫᠰ

अपेक्षा है विषादकी जननी संख्या ३] अपेक्षा है विषादकी जननी (डॉ० श्रीशैलजाजी) श्रीमद्भागवतपुराणका कथन है—'आशा हि परमं आ जाता है। कहनेका तात्पर्य यह नहीं कि संतानका दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्' अर्थात् आशा यानी अपेक्षा अपने माता-पिताके प्रति कोई कर्तव्य नहीं है। वृद्ध माता-मानव-जीवनका सबसे बड़ा दु:ख है और निराशा यानी पिताकी सेवा-शुश्रुषा करना शास्त्रोक्त कर्तव्य है। हम जगत्से उदासीनता या अनपेक्षता सबसे बड़ा सुख है। बात यहाँ अपेक्षाकी कर रहे हैं। यदि अपेक्षा नहीं की मनुष्य जीवनभर विभिन्न प्रकारकी अपेक्षाओंके सागरमें जाती तो दु:ख भी नहीं होता। यदि सामनेवाले व्यक्तिके डूबता-उतराता रहता है। यह उसकी स्वाभाविक वृत्ति द्वारा कर्तव्यपालन न करनेपर हमें दु:ख पहुँचता है तो यह है; क्योंकि इसके बिना उसके जीवनकी नाव चल नहीं स्थिति सुखद नहीं कही जा सकती। सकती। जब हम किसीके काम आते हैं तो प्राकृतिकरूपसे प्रेम जीवनका आधार होता है। अपेक्षाभाव जीवनको अपेक्षा होती है कि वह भी आवश्यकताके समय हमारी व्यापार बना देता है। केवल देनेपर आधारित है, उसमें सहायता करे। यदि अपेक्षाके अनुरूप व्यक्तिका इच्छित लेना कुछ नहीं होता, जबिक व्यापारमें लेना-देना दोनों कार्य हो जाता है तो उसे विशेष प्रसन्नता नहीं होती; ही विद्यमान रहते हैं। माँ-बाप भी अपनी संतानसे अपेक्षा क्योंकि वह सोचता है कि ऐसा तो होना ही था। लेकिन करने लगते हैं। पति-पत्नी भी बिना अपेक्षाके साथ चल नहीं पाते। जीवनस्तर इसी अपेक्षाके कारण मानवीय जब अपेक्षाके अनुसार कार्य नहीं होता है तो उसे निराशा होती है और वह दु:खके सागरमें डूब जाता है। कई धरातलसे गिरकर पशुवृत्तियोंके हवाले हो जाता है। ये बार तो वह इतना दुखी हो जाता है कि वह विषादसे वृत्तियाँ अलग-अलग परिस्थितियोंमें अलग-अलग स्वरूपोंमें उबर ही नहीं पाता। कभी-कभी तो वह अवसादग्रस्त प्रकट होती रहती हैं, जो मानसिक हिंसाका एक नया होकर अपनी जीवन-लीला भी समाप्त कर बैठता है। संसार रच देती हैं। फलस्वरूप जीवनसे सुख विदा हो जाता है। अपेक्षाकी शक्तिका अनुमान इसी बातसे लगाया अपेक्षाके पूर्ण न होनेके दु:खसे उपजी यह स्थिति जा सकता है कि यह व्यक्तिको सही मायनेमें मानव बनने विषादकी पराकाष्ठा है। दैनिक जीवनमें हम देखते हैं कि माँ-बाप अक्सर ही नहीं देती। उसकी इच्छाशक्ति सदैव हार बैठती है। अपने पुत्रसे कुछ अपेक्षाएँ पाल लेते हैं। वे सोचते हैं कि अपेक्षा तो व्यक्तिको व्यष्टि भावसे बाहर निकलने ही नहीं बेटा हमारे बुढ़ापेका सम्बल बनेगा, नि:शक्त हाथोंकी लाठी देती, जिससे मानवदेहका उपयोग समष्टिके लिये हो नहीं पाता। उसका अहंकार अकारण ही दूसरेको तुच्छ मान बनकर जीवनरूपी नावको सुखपूर्वक किनारे लगायेगा। लेकिन जब वही बेटा माँ-बापकी आशाओंपर खरा नहीं बैठता है। अपेक्षामें तो कारण भी नहीं होता। सम्पूर्ण सुखों उतरता तो उन्हें घोर निराशा होती है। उनकी उम्मीदोंपर और सुविधाओंके मध्य बैठा हुआ व्यक्ति भी सुखी रहनेकी अपेक्षा दु:खोंसे घिरा रहता है; क्योंकि अपूर्ण पानी फिर जाता है। कई बार तो वे स्वयंको कोसने भी लग रही अपेक्षा उसे सुखका अहसास करने ही नहीं देती। जाते हैं। वे भूल जाते हैं कि उन्होंने अपनी संतानके लिये जो कुछ भी किया; वह ममता, वात्सल्य, प्रेमके वशीभूत महापुरुषोंका कथन है कि अपेक्षा एक काल्पनिक होकर किया अथवा अपना कर्तव्य समझकर किया। बदलेमें विचार है। बिना किसी यथार्थीय विचारके व्यक्ति अपने किसी प्रकारके उपकारकी आशा या अपेक्षासे नहीं किया। मनमें कुछ सोच लेता है। यह स्वप्न देख लेने-जैसा माता-पिता एवं संतानके मध्य जो रिश्ता है, वह किसी कार्य है। हम अपने मनमें ही अपेक्षा पालकर दुखी हो व्यवसायकी तरह संचालित नहीं होता है। जब हम अपेक्षाके रहे हैं। वस्तुत: यह दु:ख वास्तविक नहीं है, मात्र धरातलपर उतर जाते हैं तो यह सम्बन्ध व्यापारकी श्रेणीमें कल्पनापर आधारित है।

भाग ८९ ************************* हम जीवनमें इस अपेक्षाका विस्तार भी देख सकते है। यह बात दीगर है कि अपेक्षा पूर्ण न होनेके कारण हैं। जिस व्यक्तिसे हम नाराज होकर दुखी हुए, उसके प्रति उसे दुखी होना पड़ा है। विचार करें जब मन्त्री सुमन्त घृणाका भाव भी पैदा हो सकता है। वह हमें स्वप्नमें भी (सारथी) भगवान् राम, लक्ष्मण और सीताजीको छोड़नेके ब्रे व्यक्तिके रूपमें दिखायी पड़ सकता है। जैसे-जैसे लिये वनमें गये तो राजा दशरथजीने अपेक्षा की थी कि हमारे भीतरकी पाशविक वृत्तियाँ हमारे विचारोंसे जुड़ेंगी, कुछ दिनोंके वनप्रवासके बाद वे तीनों वापस अयोध्या वैसा-वैसा स्वरूप हमारी प्रतिक्रियाओंका उभरता चला लौट आयेंगे। यदि राम वचनके कारण नहीं भी लौटे तो जायगा। पुनर्जन्मके सिद्धान्तके आधारपर हमें इस तथ्यको भी लक्ष्मण और जानकी तो अवश्य आ जायँगे; क्योंकि तो स्वीकार कर ही लेना चाहिये कि मनुष्य शरीरमें आनेसे वे वनवासके लिये बाध्य नहीं हैं। राजा दशरथने सुमन्तसे पहले हम अनेक बार पशुरूपमें भी जन्म ले चुके हैं। उनको वापस लानेके लिये कहा भी था, लेकिन तीनोंमेंसे इसीलिये हमारे पूर्वजन्मोंके संस्कार भी हमारे साथ इस जब कोई भी नहीं लौटा तो राजा घोर निराशासे घिर गये जन्ममें भी रहेंगे। बस! निमित्त पानेकी देर है कि वे मुखर और उनके वियोगमें अपने प्राणतक त्याग दिये। इसी हो उठेंगे। अपेक्षाका अर्थ ही अप+ईक्षा अर्थात् कुछ बुरा, प्रकार पाँचों पाण्डव जब द्रौपदीके साथ वनवासके बाद खोटा देखना, विचारना ही है। आक्रामकता, हिंसा, क्रोध-हस्तिनापुर लौटे तो उन्हें पूर्ण विश्वास था कि राजा जैसे कृत्य ही तो इसमें प्रमुख रूपसे छाये रहते हैं। इनके धृतराष्ट्र उनके हिस्सेका आधा राज्य उन्हें लौटा देंगे। सामने हमारा मन तो बहुत कमजोर होता है। यदि किसी लेकिन जब ऐसा नहीं हुआ तो महाभारतका भयानक आवेशको हम दबा भी लें तो फिर फूट पड़नेको तैयार युद्ध हुआ, जिसमें करोड़ों लोग हताहत हुए। कहते हैं कि व्यक्ति जब धन, पद या शरीर-रहता है अर्थात् और भी तीव्र गतिसे अभिव्यक्त होता है, जो शरीरमें भयंकर पीड़ा भी उत्पन्न कर सकता है। विचार सौष्ठवके शिखरपर होता है, तब अपेक्षाओंका ताण्डव और भी भयंकर होता है। अपनेसे कमजोरको देखते ही करके देखा जाय तो अपेक्षा मूलत: संकुचनका विकास ही है। यह मायाका क्षेत्र है। मन जैसे-जैसे छोटा होता है, वह आक्रामक हो जाता है। अपेक्षा चूँकि मनके संकुचनका कार्य करती है, अतः विवेकद्वारा इसका वैसे-वैसे दुखी भी होता है। नकारात्मक मानसिकता घर करने लगती है और जीवनके प्रति एक भ्रान्त दृष्टि विकसित निवारण भी हो सकता है। जो मित् अर्थात् सीमितीकरणसे हो जाती है। मुक्त कर सके, वही पशुसे मित्रता भी करा सकता है।

वसं-वसं दुखां भी होता है। नकारात्मक मानसिकता घर करने लगती है और जीवनके प्रति एक भ्रान्त दृष्टि विकसित हो जाती है। अपेक्षा भाव ही परिग्रहका कारण बनता है। यह ईर्ष्या, लोभ, चोरीका मार्ग प्रशस्त करता है। व्यक्तिका मायाभाव चेतनसे अचेतनमें प्रवेश करता है। दबी हुई समस्त वृत्तियाँ भी अचेतन मनमें संग्रहीत रहती हैं। यह अचेतन मन ही जीवनमें भ्रमजालका निर्माण करके यथार्थको ढक लेता है। माया और मित्रता दो विरोधी तत्त्व हैं। व्यक्ति मित्रतासे हटकर वस्तुओंकी ओर आकर्षित होता है। कामना और अपेक्षा दोनोंकी दिशा एक-सी होती है। परिणाम-स्वरूप जीवनमें नकारात्मक मानसिकता विकसित हो जाती है, जो अन्तत: हमारे दु:खोंका कारण बनती है। अपेक्षा एक ऐसा विचार है, जिससे पूरी मानवजाति

ग्रस्त है। हर युगमें व्यक्ति अपनोंसे अपेक्षा करता रहा

मुक्त कर सके, वही पशुसे मित्रता भी करा सकता है। व्यक्तिको पशुतासे मुक्त कराते ही वह मानवीय धरातलपर जीना शुरू कर देता है। मानव ज्यों-ज्यों अपेक्षाओंसे मुक्त होगा, उसका अचेतन मन खाली होता जायगा, जिससे प्रतिक्रियाओंका सिलसिला बन्द होने लगेगा और नकारात्मक भूमिका सिमटती चली जायगी। व्यक्तिका यह प्रेम धीरे-धीरे उसकी आत्माका विस्तार करने

अपेक्षा से सदा पैदा होता है विषाद। करें तौबा तो मिले सुख का प्रसाद॥

जायगा। किसी कविने बड़ा सुन्दर कहा है-

लगेगा। 'वस्थैव कुटुम्बकम्' का भाव ही उसे नरसे

नारायण बना देगा और उसका जीवन जो अपेक्षाओंकी

बेड़ियोंमें बँधा था, मुक्त हो जायगा, ऊर्ध्वगामी हो

साधकोंके प्रति— [बिन्दुमें सिन्धु] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) अविनाशी और नाशवान्—ये दो ही तत्त्व हैं। ख्याल रखो कि मेरे द्वारा किसीका अहित, नुकसान न नाशवान् तत्त्वकी प्राप्तिके लिये चौरासी लाख योनियाँ हैं, हो जाय। हरदम यह सावधानी रखो। आपके लोक और पर अविनाशी तत्त्वकी प्राप्तिके लिये एक मनुष्ययोनि ही परलोक दोनों सुधर जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है। है। इस मनुष्ययोनिमें आकर भी आप अपना समय धनका संग्रह करने और भोग भोगनेमें लगा दोगे तो फिर आप घरमें रहते हुए अपनेको मालिक न मानकर अविनाशी तत्त्वकी प्राप्ति कब करोगे? यह बात खास सेवक मानें तो आपके द्वारा बहुत हित होगा और सोचनेकी है। अभी अविनाशी तत्त्व अपने अधिकारमें स्वाभाविक बहुत उन्नित होगी। जो अच्छे-अच्छे सन्त है। वह अविनाशी तत्त्व मिलता है—दूसरोंकी सेवा हुए हैं, उनमें कोई गुण था तो वह था—स्वार्थका त्याग। करनेसे, दूसरोंका हित चाहनेसे—'ते प्राप्नुवन्ति मामेव दीखनेमें स्वार्थ अच्छा दीखता है, पर वास्तवमें स्वार्थी सर्वभूतहिते रताः।' (गीता १२।४) आदमीकी उन्नति नहीं होती। स्वार्थी आदमीका स्वार्थ हमारा लाभ हो जाय-इस स्वार्थकी वृत्तिसे हमारा सिद्ध नहीं होता। स्वार्थबुद्धि तो पशु-पक्षियोंमें भी होती है। पश्-पक्षी भी धूपसे अपनी रक्षा करनेके लिये छायामें बड़ा नुकसान है। मिलेगा कुछ नहीं और असली लाभसे वंचित रह जायँगे। हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति दूसरोंके हितके बैठते हैं, शीत तथा वर्षासे अपनी रक्षा करते हैं; परंतु वे लिये होनी चाहिये। अपने स्वार्थकी वृत्ति बहुत पतन अपना कल्याण नहीं कर सकते। कल्याण वही कर सकता करनेवाली है; परंतु हरेक काम करनेमें यही वृत्ति मुख्य है, जो अपने स्वार्थका त्याग करके दूसरेका हित करता है। रहती है कि मेरेको सुख कैसे हो, लाभ कैसे हो? होना आपका भला वास्तवमें भगवान्की कृपासे होगा,

साधकोंके प्रति—

यह चाहिये कि दूसरोंको लाभ कैसे हो? दूसरोंका दु:ख कैसे दूर हो? कोई भी काम करें तो 'मेरेको क्या फायदा होगा'—इसकी जगह यह सोचें कि 'दूसरोंको क्या फायदा होगा।' जिस कामसे दूसरेको लाभ नहीं होगा, वह काम हम नहीं करेंगे। इस प्रकार भाव बदले बिना शान्ति नहीं मिलेगी। आपका उद्देश्य दूसरोंका हित करनेका होगा तो आपका हित अपने-आप होगा, इसमें

आपको अपने निर्वाहकी चिन्ता करनेकी जरूरत

दुसरेका हित न कर सको तो कम-से-कम इस बातका

सन्देह नहीं है।

संख्या ३]

जब आप अपना स्वार्थ और अभिमान छोड़ दोगे, भगवान्के शरण हो जाओगे। भगवान्की कृपाका भरोसा रखोगे तो जहाँ जाओगे, वहीं आपकी विजय होगी। पाण्डवोंने विजय प्राप्त की तो उसके पीछे भगवान्की कृपाका ही बल था। इसलिये आप निमित्तमात्र बन जाओ, रात-दिन भजन-स्मरण करो, पर भरोसा कृपाका ही रखो। एक भगवान्को याद रखो तो सब काम सिद्ध हो जायगा, लोक और परलोक सब सिद्ध हो जायगा—

आपकी चतुराईसे नहीं। अपनी चतुराईसे भला होता हो

तो सब अपना भला कर लें। भगवान्की कृपा तब होगी,

नहीं है। आपके निर्वाहका प्रबन्ध पहलेसे है। जिस हो जायगा, लोक और परलोक सब सिद्ध हो जायगा— परमात्माने जन्म दिया है, उसपर आपका पालन करनेकी 'एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।' जिम्मेवारी है। सबके हितका भाव रखनेसे आपकी जो भगवान्के भक्त भगवान्को याद रखते हैं, फिर वे उन्नित होगी, वह स्वार्थका भाव रखनेसे नहीं होगी। संसारके सुख और दुःखकी परवाह नहीं करते।

भाग ८९ ************************* आपके दो खास काम हैं—भगवान्को याद रखना सेठजीने कहा कि 'मनमें अच्छी बात रखो। किसीके और दूसरोंको सुख पहुँचाना। दूसरोंको सुख न पहुँचा प्रति बुरा भाव लेकर जाना अच्छा नहीं है।' वह बोला सको तो कम-से-कम किसीको दु:ख मत पहुँचाओ। कि 'महाराज, यह तो साथमें ही जायगा।' सेठजीने आप किसीके दु:खमें निमित्त मत बनो। किसीको बुरा कहा कि 'साथमें बढ़िया चीज लेकर जाओ, वैर क्यों लेकर जाओ!' पहलेवाले सज्जनके मनमें बड़ा दु:ख मत समझो, किसीका बुरा मत चाहो और किसीका बुरा मत करो-यह मामूली बात नहीं है, बहुत ऊँची बात हुआ कि मैं वैर छोड़ना चाहता हूँ, पर यह वैर छोड़ता है। इससे आपका अन्त:करण निर्मल होगा, नहीं तो नहीं! यह वैर नहीं छोड़ेगा तो मेरा वैर छूटेगा नहीं! अब अन्त:करण निर्मल नहीं होगा। अन्त:करण निर्मल हुए मैं क्या करूँ ? वे घबरा गये और रोने लग गये। सेठजीने बिना अच्छी बातें पैदा नहीं होंगी, पैदा होंगी भी तो उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा कि 'मेरा स्वभाव नहीं है, फिर भी कहता हूँ कि वह भले ही वैर रखे, पर तुम्हारा ठहरेंगी नहीं। अन्त:करण जितना निर्मल होगा, उतनी आपको स्वाभाविक उन्नित होगी—यह सिद्धान्त है। वैर तो निकल गया!' सेठजीने दूसरे व्यक्तिसे कहा कि 'मैं तुम्हें भी कहता हूँ कि तुम भी वैर छोड़ दो।' उसने भला करना इतनी ऊँची बात नहीं है। बुराईका त्याग करनेसे भलाई स्वतः होगी। दूसरोंकी सेवामें रुपये खर्च विचार किया कि दूसरेने तो वैर छोड़ दिया और सेठजीने करना ज्यादा ऊँची बात नहीं है। यह तो एक टैक्स है। भी कह दिया कि तुम्हारा वैर निकल गया, तो फिर मैं टैक्स देना दण्ड है, कोई ऊँची बात नहीं है। आपने अकेला ही वैर क्यों रखूँ ? ऐसा सोचकर उसने भी कह दिया कि 'मैं भी वैर छोड़ता हूँ।' दोनोंने आपसमें रुपया इकट्ठा किया है तो टैक्स दो, दूसरोंकी सेवा करो। मिलकर एक-दूसरेको नमस्कार कर लिया। आगे चलकर मैंने सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-की एक एक बार जब स्वर्गाश्रममें वटवृक्षके नीचे सत्संग हो रहा पुरानी बात सुनी है। सेठजी गोहाटी गये थे। वहाँ था, तब उस व्यक्ति (जिसने सर्वप्रथम वैर छोडा था)-व्याख्यान देते समय उन्होंने गीताके 'निर्वेर: सर्वभूतेषु''' (११।५५)—इस पदकी विस्तारसे व्याख्या करते हुए के बेटेने सेठजीको बताया कि मेरे पिताजीका शरीर छूटा तो उनके प्राण दशम द्वारसे निकले! उनकी वही गति कहा कि किसी भी प्राणीके साथ अपने हृदयमें वैर नहीं हुई, जो योगियोंकी होती है! रखना चाहिये। वैरभाव, ईर्ष्या रखनेसे अन्त:करण बहुत अशुद्ध होता है। वहाँ सत्संगमें दो धनी वृद्ध सज्जन बैठे धर्मके लिये, दान-पुण्य करनेके लिये, दूसरोंका

हे सिंग बेपंडरण ही दिख्या के अध्यक्ष के सिंग अधिक कि विश्व कि स्थापन के अधिक मिन सिंग कि सिंग प्राप्त के अधिक क

हित करनेके लिये भी पैसेकी जरूरत नहीं है। जो धर्मके

लिये पैसा चाहता है, वह धर्मके तत्त्वको नहीं जानता।

बम्बईमें मेरेसे कहा गया कि गायें भूखों मर रही हैं, अगर

आप सत्संगमें कुछ दान-पेटियाँ रखवा दें और धनी

आदिमयोंको इकट्ठा करके गायोंकी सेवा करनेकी प्रेरणा

करें तो बहुत रुपये इकट्ठे हो जायेंगे, जिनसे गायोंकी

बहुत सेवा होगी। मैंने कहा कि मैं वास्तवमें यहाँ ईश्वर और धर्मका महत्त्व बढ़ाने आया हूँ। अगर मैं ऐसी बात

थे। उनकी आपसमें खटपट थी। उनमेंसे एक बोला कि 'मेरा दुनियामें किसीके साथ वैर नहीं है, केवल एक व्यक्तिके साथ वैर है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मरनेवाला हूँ। वैर साथमें रखकर जाना ठीक नहीं है। इसलिये आजसे

मैं वैर यहीं छोड़ देता हूँ। अब मैं उसे कभी दु:ख नहीं

पहुँचाऊँगा। उसका बुरा कभी नहीं चाहूँगा, नहीं

करूँगा।' दूसरा व्यक्ति भी वहीं बैठा हुआ था। सेठजीने

उससे पूछा तो उसने कहा कि 'यह आज सीधा हुआ

है! इसने मेरेको बहुत दु:ख दिया है। आज यह कहता

संख्या ३] मन को बुहार चीज है, स्वामीजी भी पैसा लानेकी बात कहते हैं! मूल, खास बात है। इनको भी पैसोंकी जरूरत है! इससे पैसोंका ही महत्त्व एक विलक्षण बात है कि परमात्मा सम्पूर्ण बढ़ेगा, जो आपके भीतर पहलेसे ही बढ़ा हुआ है। मैं प्राणियोंमें हैं। अगर कोई समझना चाहे तो मनुष्यमात्र पैसोंका महत्त्व बढाना नहीं चाहता। कलकत्तेमें भी इस तत्त्वको समझ सकता है। शरीर किसीके साथ मुझसे ऐसी बात कही गयी तो मैंने कहा कि किसीको रहनेवाला नहीं है और परमात्मा किसीका साथ छोड़नेवाले पैसोंके लिये कहना, पैसे मॉॅंगना उसके कलेजेमें छुरी नहीं हैं। परमात्मा सबके साथ सदा रहते हैं। केवल यह चलाना है! ऐसा कसाईपना मेरेसे नहीं होता। लोग कहते विश्वास कर लें कि परमात्मा सबमें हैं और वे मेरे हैं। तो हैं कि पैसा हाथकी मैल है, पर यह बात केवल जैसे हवाई जहाज चलता है तो उसमें कोई मनुष्य कहनेकी है। वास्तवमें तो पैसा उनके कलेजेकी कोर (चालक) दीखता नहीं, पर उसमें मनुष्य जरूर होता है, नहीं तो उसको चलाता कौन है ? ऐसे ही परमात्मा सबमें (टुकडा) है! हैं, नहीं तो सबको चलाता कौन है ? वे परमात्मा हमारे आपकी शक्ति हो तो गायोंका पालन करो, गरीबोंकी सेवा करो, पर किसीसे पैसा मत माँगो। पैसोंकी हैं। एक बात और समझनेकी है कि एक परमात्माके सिवाय अपनी चीज कोई नहीं है। अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, गुलामी मत करो। आपके भाग्यसे जो पैसा आनेवाला है, वह तो आयेगा ही। ब्रह्माजीकी भी ताकत नहीं कि पर उनमें तिल जितनी चीज भी अपनी नहीं है। इसलिये संसारसे मिली हुई चीजोंके द्वारा संसारकी सेवा करो, उसे रोक दें! संसारको सुख पहुँचाओ। 'है' नाम परमात्माका ही है। परमात्माको प्राप्त करना सम्भव है, पर शरीरको संसार 'नहीं' है। जो 'है', वह हमारा है। जो 'नहीं' बनाये रखना असम्भव है। उम्र कम-ज्यादा हो सकती है, वह हमारा नहीं है। ऐसा विश्वास करो कि हमारा परमात्मा हमारेमें है। है, पर शरीर सदा बना रहे—यह सम्भव नहीं है। जो बहुत बड़े चिरंजीवी हैं, उनका भी शरीर सदा बना नहीं परमात्मा विश्वाससे मिलते हैं— रहता। इसलिये शरीरको बनाये रखनेकी धारणा न करके 'बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रविंह न रामु॥' परमात्माको प्राप्त करनेकी धारणा करनी चाहिये। यह (रा०च०मा० ७। ९०क) मन को बुहार (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०) मन को बुहार, मन को बुहार मोह की माया प्रबलतम कर विवेक निकलें विकार। मुक्ति में व्यवधान क्या असत् क्या है अहितकर मोह से आवागमन सब है॥४॥ सोचले, विचार॥१॥ मोह ही करले जंजाल है असत् वो निरर्थक गहन है गति कर्म की सो जो सुनो। के भ्रम कारण भासता। सावधान होकर जो भी है अहितकर शुद्ध हों निष्काम हों सब में फाँसता॥२॥ दिन-रात में रखो॥५॥ ये मन भव समर मन को बुहार, मन को बुहार कामना कितनीं बसीं प्रभु को निहार, जग दे बिसार। गहरी में भी। मन आज एक पूरी हो भी आनन्द लगती सी॥३॥ प्यास देखले कर एक बार॥६॥

अन्त मित सो गित

(श्रीइन्द्रमलजी राठी) उसपर नियन्त्रण पाना दुष्कर है, किंतु असम्भव नहीं।

सन्तोंने, पूर्वजोंने एवं आध्यात्मिक मनीषियोंने लम्बे

अनुभवके उपरान्त 'अन्त मित सो गित' सूत्रका हमारी भारतीय-संस्कृतिमें नित्यकर्मका अपना महत्त्व है। प्रतिपादनकर स्पष्ट किया है कि मरणासन्न प्राणीके ठीक इस हेत् आप जितना भी समय दें, उस कालमें सांसारिक

मृत्युके पूर्व जैसे विचार होंगे, भगवान् उसे वही योनि विचारोंसे परे उसीमें निमग्न हो जायँ, ५-१० मिनटसे लेकर घण्टे-दो घण्टे अथवा जितना भी समय उसके

निश्चित रूपसे प्रदान करेंगे—इसमें तनिक भी संशय नहीं। विभिन्न योनियोंमें प्रतिपादित सुकर्मोंके फलस्वरूप

प्रभुने मोक्षका पात्र समझकर प्राणीको इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये मानवयोनि प्रदान की है फिर भी वह यदि

पथभ्रष्ट हो पुन:-पुन: विभिन्न योनियोंमें भटकनेसे

अपने-आपको मुक्त नहीं कर सकता तो इसमें दोष किसका? कर्मके कारण ही ऐसा होता है। कर्म करना जगतुका मुख्य कर्तव्य है। ईश्वरने

कभी भी नहीं कहा कि कर्मसे परे रहें, परहेज करें। कर्म करो मगर स्वार्थवश नहीं, परमार्थहेतु करो। अपना अनिष्ट सहकर भी परमार्थहेतु किया गया कर्म भगवानुको

अत्यन्त प्रिय है। प्रत्येक कर्म उसके द्वारा प्रेरित, निर्दिष्ट एवं निर्धारित है, जिसके लिये निमित्त तो आपको बनना

ही पडेगा। कर्म-बन्धनसे मुक्तिके लिये प्रत्येक कर्म पूर्ण

निष्ठाके साथ निष्पादितकर उस परम पिताको समर्पण कर

दो। कर्म उसीका, कर्मकर्ता भी वही और फल-भोक्ता भी वही। तुम्हारी संलिप्तता ही कर्ताभिमानका अहं

पालकर तुम्हें पद-विचलनका दोष भोगा रही है। यही वह भ्रम है। भगवान्ने इससे मुक्ति पानेके लिये जो उपाय

सुझाया है, वह ही अन्त मित सो गितका है। इसका विपरीतार्थ कभी न लगाया जाय कि जीवन नरकगामी कर्मोंमें संलिप्त रहकर भी अन्त समयमें भगवन्नाम-जप

और दर्शनद्वारा मोक्ष मिल ही जायगा। वस्तुत: ऐसे प्राणीको भगवान् निजोन्मुखी होने ही नहीं देता। अतः जीवनपर्यन्त फलोन्मुखी न होकर सत्कर्मींसे मोक्ष पानेकी

अनुपालनामें तनिक भी कोताही उसे स्वीकार्य नहीं।

मानव मन वायु-वेगसे भी अधिक गतिशील है।

पात्रता अर्जन करते रहना उसका प्रथम निर्देश है। उसकी

रहना ही ध्यानावस्था है। आयुर्वृद्धिके साथ-साथ सामान्य जीवन-यापनमें

भी व्यवधान होना स्वाभाविक है। अत: अधिकाधिक समय भगवन्नाम-जपमें लगाना ही अधिक श्रेयष्कर होगा। सांसारिक संलिप्ततासे भी परे रह सकेंगे। यह सोपान आपको अंतिम समयमें भी भगवानोन्मुख बनाये

रखनेमें सहायक सिद्ध होगा। भगवान्ने तो गीतामें स्पष्ट किया है कि एक बार तू मेरा हो जा, फिर देख मैं तेरा कितना ध्यान रखता हूँ। स्पष्ट संकेत है कि मन, कर्म,

स्मरणहेतु दें, उस समयमें मन-दृष्टि केवल सम्बन्धित

विग्रह अथवा टीका/तिलक-बिन्दु (दोनों भौंहोंके मध्य)-

पर स्थिर रखें। शनै:-शनै: अभ्याससे मन सांसारिक

विचारोंसे परे भक्तिभावमें ही निमग्न हो जायगा।

तल्लीनता बढ़ेगी, आश्वस्त होनेपर अगला पद होगा

निर्विचार होना। धीरे-धीरे विचारशून्य रहनेका अभ्यास बढाते जायँ। भगवन्नामदेशानुसार मन्मना, मद्भक्त एवं

मद्रूप होनेमें उसीकी असीम अनुकम्पासे शीघ्र सफलता

प्राप्त होगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, इसके उपरान्त

अगला पद ध्यानका है। लम्बे समयतक निर्वेचारिक

वचन एवं विचारसे एक बार शरणागत होनेपर आप

निजोन्मुख बनाये रखेगा, असमर्थताकी दशामें वह अपने

उसके और वह आपका हो जायगा। मैं केवल भगवानुका और केवल भगवान् ही मेरे-यही एकमात्र विचार सदा-सर्वदा आपके मन-मस्तिष्कमें रहेगा। दुष्कृत्योंसे दूर रखकर वह आपको सुकृत्योंहीमें लीन रखेगा।

िभाग ८९

भक्तका सदैव ध्यान रखते हुए अन्तकालमें वह अपनेहीमें उसे समाहित कर लेता है। बस, यही मोक्ष है, प्राणी

अन्तमें उसीमें लीन हो जाता है, तद्रुप हो जाता है।

जीवनमें सफलताके सुत्र संख्या ३] जीवनमें सफलताके सूत्र (श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी) जीवनका उद्देश्य निर्धारित करें — उद्देश्यके बिना रीति सदा चिल आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न व्यक्तिका जीवन कोई महत्त्व नहीं रखता और वह ऐसे जाई॥' जिसको वचन दें, उसे अवश्य पूरा करें। वचन-ही है जैसे बिना पतवारके नाव। मनुष्यका जीवन यूँ ही पालनसे ही समाजमें आपकी विश्वसनीयता बढ़ती है। जीनेके लिये नहीं हुआ है, यह तो कुछ करनेके लिये आपकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी तो आपकी उन्नतिको भी कोई हुआ है, जिससे उसका स्मरण मरनेके बाद भी लोग कर नहीं रोक सकता। अतः सदा मन, कर्म और वचनसे अपने कर्तव्यको पूरा करना चाहिये। सकें। जीवनका उद्देश्य निश्चित करके उसकी पूर्तिहेतु सावधानीपूर्वक कार्य करना जरूरी है। समयका सद्पयोग करें — समयका सद्पयोग नित्य प्रभ्-स्मरण करंं — प्रतिदिन प्रार्थना, स्तुति, प्रत्येक कार्यको समयपर पूर्ण करके किया जा सकता है। प्रभुके ध्यानके लिये कुछ समय (कम-से-कम आधा जिस कार्यको करें पहले उसे पूरा करके दूसरा कार्य प्रारम्भ करे। कार्यालयमें, समारोहमें और यात्रा आदिके घण्टा) अवश्य दें। परिवारमें प्रति सप्ताह सामूहिक सत्संग, भजन, कीर्तन आदिके लिये भी समय निश्चित लिये निश्चित समयपर पहुँचकर समयकी पाबन्दीका करें। प्रतिदिन कार्य आरम्भ करनेसे पूर्व माता-पिता, ध्यान रखना ही सफलताकी निशानी है। आलस्य या गुरुको नित्य प्रणाम करें; क्योंकि प्रभुकी कृपा एवं व्यर्थकी बातोंमें समयका दुरुपयोग होता है। कहते हैं पुज्यजनोंके आशीर्वादसे ही हर क्षेत्रमें सफलता प्राप्त हो बीता हुआ समय वापस नहीं आता है। अत: समय बरबाद न करना चाहिये। वर्तमान समयको इतना सकती है। अपने कामको श्रेष्ठ मानें — अक्सर ऐसा होता खुबसूरत बना लें कि इन सुनहरे दिनोंको कभी भुला न है कि जो जिस काममें है, वह उस काममें खुश नहीं सकें। होता। नौकरीवालेको व्यवसायमें तथा व्यवसायवालेको अपने कार्यमें व्यस्त रहें — एकाकीपनको दूर नौकरीमें अधिक लाभ दिखायी देता है। नौकरीवालेको करनेका सर्वोत्तम तरीका है-कार्यव्यस्तता। सदा कार्यमें जीवन पराधीन लगता है। व्यापारीको जीवनमें घाटेकी व्यस्त रहनेसे खुशी मिलती है। अपने कार्योंको सकारात्मक ढंगसे पूरा करके आप अधिक सक्षम हो सकते हैं। चिन्ता रहती है और दुकानमें कार्यके लिये समय भी प्रतिदिन एक घण्टा कम सोनेसे आप अपने जीवनमें अधिक देना पड़ता है। किसानको लगता है कि खेतीसे कार्यके लिये पाँच साल बढा सकते हैं। जितने भी आय कम होती है तथा मेहनत ज्यादा करनी पड़ती है। इस तरह सभीको अपने-अपने कार्यमें असन्तोष महसूस महापुरुष हुए हैं वे सदैव अपने लक्ष्यके प्रति सचेत एवं होता है। किंतु यदि आप पूरे जीवनमें खुशी चाहते हैं सतर्क रहे हैं। उनकी कार्यके प्रति समर्पित भावनासे ही तो अपने कामसे प्यार करें, अपने कार्यको ही श्रेष्ठ मानें; उन्हें कठिन कार्योंमें भी सफलता प्राप्त हो सकी। आध्यात्मक बनिये—विलासिता सत्यकी प्राप्तिके क्योंकि कार्य ही पूजा है। कर्तव्यपालन जरूरी है-माता-पिताके प्रति, मार्गमें सबसे बड़ी बाधा है। विलासिताका परित्यागकर भाईके प्रति, पत्नीके प्रति, मित्रके प्रति, बच्चोंके प्रति क्या व्यक्ति अध्यात्मकी ओर बढ़ सकता है एवं दृढ़ कर्तव्य हैं? यह जानना तथा उसपर आचरण करना विश्वासकी उच्च स्थितिको प्राप्त कर लेता है। इन्द्रियोंकी बुद्धिमानी है तथा जीवनको उन्नत बनानेके लिये विशेष आसक्तिसे ऊपर उठिये, तभी जीवनमें आगे बढ़ सकेंगे। महत्त्वपूर्ण है। रामायण हमें कर्तव्यपालनकी शिक्षा देती भौतिक पदार्थ क्षणभंगुर हैं, हम उन्हें वस्तुत: अपना नहीं है। तुलसीदासजीने रामायणमें लिखा है—'**रघुकुल** कह सकते, वह तो केवल अल्प समयके लिये हमारे

भाग ८९ पास रहते हैं, किंतु आध्यात्मिक उपलब्धियाँ स्थायी कामना रखे। सुखकी अपेक्षा दु:खमें मित्रका अधिक होती हैं, जो हमेशा हमारे साथ रहती हैं। भौतिक साथ दें। चीजोंमें अनासक्तिसे ही आध्यात्मिक उपलब्धि प्राप्त की सबके प्रति सद्भावना रखें—दूसरोंके साथ वही जा सकती है तथा जीवनको आनन्दमय बनाया जा व्यवहार करें-जैसा आप अपने लिये चाहते हैं। बहससे कोई फायदा नहीं होता, ईमानदारीसे सामनेवाले व्यक्तिका सकता है। **आत्मनियन्त्रण करिये**—आत्मनियन्त्रणद्वारा मनुष्य नजरिया समझनेकी कोशिश करें। सामनेवाले व्यक्तिके ऊँचाईयोंके शिखरतक पहुँच सकता है। प्रत्येक व्यक्तिमें विचारों और इच्छाओंके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करें। बहुत कुछ कर सकनेकी क्षमता होती है। उसकी दुसरे व्यक्तिके विचारोंके प्रति सम्मान दिखायें। यदि वे उन्नतिका सबसे बड़ा रहस्य है आत्मनियन्त्रण। यही गलत भी हों तो उसे एकान्तमें समझायें। अगर गलती मनुष्यके आगे बढ़नेकी पहली सीढ़ी है। इसलिये जिस आपकी हो तो तत्काल अपनी गलती मान लें। दूसरोंकी व्यक्तिने आत्मनियन्त्रण कर लिया, उसे अवश्य सफलता छोटी-सी दयालुताको न भूलें, अपने छोटे-से उपकारको मिलती है। जो व्यक्ति आत्मनियन्त्रण कर लेता है, वही भी याद न रखें। किसीके प्रति दुर्भावना, कठोरता तथा कटुताकी भावना नहीं होनी चाहिये। सबके प्रति क्रोधपर नियन्त्रण कर सकता है। **आत्मनिरीक्षण करिये**—आत्मनिरीक्षण एवं आत्म-सद्भावना रखें। सुधार करके अपनी छोटी-छोटी गलतियोंको पहचानकर मुसकरानेकी आदत डालें — आपकी मुसकराहट उन्हें दुबारा नहीं दोहरायें, तभी जीवनमें उन्नति कर आपकी सद्भावनाका सन्देश है। आगन्तुकका मुसकराते सकते हैं। आप हर सप्ताह अपनी प्रगतिका मूल्यांकन हुए स्वागत करें। मुसकराते रहेंगे तो तनाव एवं करें तथा यह मालूम करें कि आपने कब कौन-सी चिन्ताग्रस्त नहीं होंगे। गुलाबके पुष्पकी भाँति चेहरेपर गलती की और भविष्यमें उसे न करनेका संकल्प करें। सदा मुसकान रखें। सदा हँसते-मुसकराते रहेंगे तो सभी आवश्यकताएँ कम करिये—दूसरोंकी देखा-आपको पसन्द करेंगे। आपकी पाचनशक्ति भी बढ़ेगी देखी अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाकर आयसे अधिक खर्च तथा आपका स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। बढाना क्या उचित है ? अपनी आयसे अधिक खर्च नहीं उत्साहवर्धन करें - दूसरोंको प्रोत्साहित कीजिये करें। हमें ध्यान रखना चाहिये कि जितनी हमारी ताकि उनका उत्साहवर्धन हो। सराहना और प्रोत्साहनके आवश्यकता कम होगी, उतनी चिन्ता भी कम होगी और द्वारा लोगोंसे कठिन कार्य भी कराये जा सकते हैं। दिल सन्तोष अधिक होगा। सिर्फ आवश्यक वस्तुओंकी ही खोलकर तारीफ करना तथा मुक्तकण्ठसे प्रशंसा, सराहना खरीददारी करें, घरको म्युजियम न बनायें। करना उत्साहवर्धनमें सहायक होता है। सच्ची प्रशंसा आदर्श मित्र चुनें — मित्र क्या है ? वह एक ऐसा करनेकी आदत डालें। दूसरोंकी गलतियाँ सबके सामने व्यक्ति है, जिसके साथ आप स्वयं निडर हो जाते हैं। न बतायें। किसीकी आलोचना करनेसे पहले अपनी मित्र वह है, जिसके सामने कोई अपने दिलकी सब बातें गलतियोंपर ध्यान दें। अच्छे कार्य करनेवालोंके छोटे-प्रकट कर सकता है। एक मित्र-विहीन व्यक्ति ऐसा है से-छोटे कार्यकी भी प्रशंसा करें। सामनेवाले व्यक्तिकी जिसका बायाँ हाथ है, लेकिन दायाँ नहीं। कोई भी आप दिल खोलकर तारीफ करेंगे और मुक्त कण्ठसे व्यक्ति बिना मित्रके बेकार है। आदर्श मित्र वही है, जो सराहना करेंगे तो वह आपका कहा काम ख़ुशी-ख़ुशी अपने मित्रोंके प्रति वफादार रहे। मित्र ज्यादा न हों तो करेगा। कार्य पूर्ण होनेपर धन्यवाद एवं आभार प्रकट केवल दो-चार विश्वसनीय मित्र ही रखें। मित्र ऐसा हो करना भी न भूलें।

जी पंतरिक्षां ब्राप्ति सिङ्क्षिति एवेण स्वयं प्रीयम्बुः स्पृष्टिन् polehharma सन्त्रीकी प्रेन्नः WI मही बित्ते हे है हिस्तिकी प्रवेष्ट सुर्खीति

जीवनमें सफलताके सूत्र संख्या ३] धनोपार्जनके लिये गलत तरीके एवं भाग-दौडसे आप क्रोधपर नियन्त्रण करिये—क्रोध मनुष्यका सबसे तनावग्रस्त हो सकते हैं; क्योंकि जरूरतें खत्म हो सकती बड़ा शत्रु है। क्रोधपूर्ण व्यवहारसे क्रोधपर नियन्त्रण नहीं हैं पर लालच नहीं। जो थोडेसे सन्तुष्ट है, उसके पास किया जा सकता है। अत: सब तरहसे बौखलाहट तथा सब कुछ है। जीवन जीना एक ऐसी कला है, जिसमें दुर्व्यवहारका परित्याग कीजिये। शान्तचित्त, आत्मनिर्भर कम साधनोंसे जीवनको आनन्दमय बनाया जा सकता और दयालु बने रहिये। है। संग्रहकी प्रवृत्ति कभी नहीं रखें। निन्दा न करें — बुराई मत करो, निन्दा मत करो, शिकायत मत करो। प्रशंसा और चापलूसीमें अन्तर उपकारकर भूल जायें—अरस्तूके अनुसार आदर्श व्यक्ति वह है, जिसको दूसरोंका उपकार करनेमें सुख है। एक सच्ची होती है, दूसरी झुठी। एक दिलसे मिले और जो दूसरोंके उपकारोंको स्वीकार करनेमें निकलती है, दूसरी बनावटी होती है। आलोचनासे कोई लज्जा महसूस करे; क्योंकि दूसरोंपर कृपा करना सुधरता नहीं है, अपितु सम्बन्ध बिगड़ते हैं। किसी भी महानताका परिचायक है, किंतु दूसरोंकी कृपा हासिल व्यक्तिकी निन्दा, आलोचना, टीका-टिप्पणी न करें, करना हीनताका परिचायक है। इससे कोई फायदा नहीं होता है, बल्कि मनमुटाव हो विचारोंका आदान-प्रदान करें — यदि आपके जाता है। पास एक रुपया है और मेरे पास भी एक रुपया है और प्रत्येक पाप, दुराचारसे बचिये — यह न सोचें हम एक-दूसरेसे रुपये बदल लेते हैं तो भी हम दोनोंके कि छोटे-छोटे दुराचार, पाप, चोरी आदिमें कोई दोष पास एक-एक रुपया ही रहता है, किंतु यदि आपके नहीं हैं। जैसे बूँद-बूँदसे घड़ा भरता है, वैसे ही छोटे-पास कोई बेहतर विचार है और मेरे पास कोई दूसरा छोटे पाप एवं दुराचारोंसे हमारा चरित्र गिर जाता है और विचार है और हम आपसमें ये विचार बदल लेते हैं तो हम दूसरोंकी नजरोंमें गिर जाते हैं। दूसरोंका हमारे प्रति आदर-सम्मान कम हो जाता है। इसलिये छोटे-छोटे हम दोनोंके पास दो बेहतर विचार हो जाते हैं। इसलिये दोषोंको भी भयंकर अपराध समझकर उनका परित्याग विचारोंके विनिमयसे अपने ज्ञानकी अभिवृद्धि करें। गलतीसे सबक सीखें—गलती मनुष्यसे होती है, करना चाहिये। विश्वमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिससे गलती नहीं शरीरको निरोगी रखें—सबसे महत्त्वपूर्ण बात है हुई हो। गलतीसे सबक सीखना चाहिये। वैसी गलती शरीरको निरोगी रखना। शरीरको निरोगी रखनेके लिये दुबारा नहीं हो, यह ध्यान रखना चाहिये। ठोकर खाकर नित्य सूर्योदयसे पहले उठना, प्रात: भ्रमण करना, दुबारा ठोकर न खायें, इसीमें बुद्धिमानी है। व्यायाम, योग, प्राणायाम करना जरूरी है। गरिष्ठ अहंकार न करें — मैं ही अधिक बुद्धिमान् एवं भोजन, मांसाहार, अण्डे, धूम्रपान, मदिरापान, फास्ट सर्वगुणसम्पन्न हूँ — यही मनुष्यका सबसे बड़ा भ्रम है। फूड, कोल्डड्रिंक, तम्बाखु, पान-मसाले, गुटखा आदिका सेवन कभी न करें। स्वच्छ हवा, शुद्ध पानी, गायका उन्नतिके रास्तोंमें सबसे बडी बाधा अपनेको अपनी योग्यतासे अधिक प्रदर्शनकी भावना होती है। सदैव दूध, अंकुरित अनाज, फल, कच्ची सिब्जियोंके सलादका दूसरोंसे सीखनेकी भावना होनी चाहिये। तभी निरन्तर सेवन करनेसे ही सदा निरोगी रह सकते हैं, अत: इनका ज्ञानमें वृद्धि होगी तथा प्रगतिकी ओर कदम बढ़ेंगे। ही ज्यादा-से-ज्यादा उपयोग करना चाहिये। आप भी इन सूत्रोंको अपने दैनिक जीवनमें अहंकारी मनुष्यको सदैव नीचा देखना पड़ता है। रावण एवं कंसका सर्वनाश उनके अहंकारके द्वारा ही अपनाकर सफलताके शिखरपर पहुँच सकते हैं तथा जीवनको आनन्दमय बना सकते हैं। हुआ था।

'प्रिय लागे मोहि ब्रज की बीथिन'

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

झुलसाती गर्मीको अपने आँचलमें समेटे आषाढ़

स्याम स्यामा संग झूलत, सखी देत झुलाई।

मास विदा हुआ। गीत, संगीत और नृत्यसे सुशोभित

हरियाले सावनका शुभागमन हुआ। आकाश-मण्डल

श्यामल मेघमालाओंसे आच्छादित होने लगा। सहसा ही गगनमें बिजुरिया चमकने लगी, बदरा गरजने लगे,

नन्हीं-नन्हीं बुन्दियाँ पृथ्वीको शीतल करने लगीं। वर्षाकी

झरती बूँदोंसे भीगकर हरी-भरी लताएँ पुरवैया वायुके स्पर्शसे झुमने लगीं। वनोंमें मयुरोंका नृत्य देख कोकिलोंके

कण्ठ भी मुखरित हो उठे। हरियाली और रंग-बिरंगे

पुष्पोंने पृथ्वीमाताको शृंगारित कर दिया। प्रकृतिके ऐसे मनमोहक सौन्दर्यसे आकर्षित हो ब्रजकी रसिक गोपियाँ यमुनापुलिनपर जानेको अधीर हो उठीं। वे एक-एक कर

अपने-अपने भवनसे बाहर आयीं और मल्हार गीत गाती हुई चल पड़ीं कालिन्दीतटकी ओर। उधर श्रीराधारानी अपने भवनकी छतपर बैठी दूर गगनमें पक्षियोंका उड़ना देख रही थीं। जैसे ही उन्हें नारी कण्ठसे मधुर गीत

सुनायी पड़े, वे शीघ्रतासे उनके बीच पहुँचनेको लालायित हो उठीं। उसी समय श्रीराधाने ललिता, बिशाखा आदि

अपनी प्रिय सिखयोंका मानसिक स्मरण किया। वे तुरंत ही श्रीवृषभानु-भवनमें उपस्थित हो गयीं। श्रीराधा उन सबको अपने संग ले यमुना-पुलिनपर जा पहुँचीं। संयोगसे

श्रीकृष्ण भी अपने बाल सखाओंसहित वहाँ आ पहुँचे। सिखयोंका संकेत पाकर विश्वकर्माने उसी स्थानपर एक दिव्य झुलेका निर्माण कर दिया। प्रिया-प्रीतमको

उस झूलेपर विराजमान करा सखियाँ झौंटे देने लगीं।

इस लीलाका सरस वर्णन करते हुए सूरदासजीने लिखा है-यमुना वंशीवट निकट हरन हिंडोरे हीथ।

रंग देव्यादि झुलावहिं झूलत प्यारी पीव॥ द्वै खंभ विसकर्मा बनाए कामकुंद चढ़ाई।

हरित चूनी, जटित नग सब लाल हीरा लाई॥ बहुत विद्रुम, बहुत मूला, ललित लटके कोर।

बहुरंग रेसमबरुहा, होत राग झकोर॥

सबै सरस सिंगार कीने रूप बरनि न जाई॥ श्रीराधा-माधवको झुलाते समय अनेकों गोपियोंके

मधुर कण्ठसे निकली मधुर-ध्वनिसे सम्पूर्ण ब्रजमण्डल गुंजायमान हो उठा। गोपियोंको प्रेममें लीन देख श्रीराधाको झुलेपर छोड़ श्रीकृष्ण समीपके कुंजमें जा छिपे। कुछ

ही पलोंके पश्चात् जब गोपियोंकी आँखोंसे मायाका परदा हटा, तब उन्होंने देखा कि झूला खाली पड़ा है।

नीलमणि कहाँ चले गये, किसीको कुछ पता नहीं। श्रीराधासे सिखयोंने पूछा—श्रीकृष्ण तो तुम्हारे संग बैठे थे, वे कहाँ गये और कब गये ? श्रीराधाने कहा—मैं तो

उनके प्रेममें लीन आँखें बन्दकर झुलेका आनन्द ले रही थी, मुझे उनके विषयमें कोई जानकारी नहीं है। अब तो सिखयाँ सोचने लगीं, उन्हें कहाँ ढूँढ़ने चलें? लिलता सखी कहने लगी, चिन्ताका कोई कारण नहीं है, मुझे

उनके सब स्थानोंका पता है, जहाँ-जहाँ वे जाते हैं, ललिता कहने लगी-कामवन काहु दिन काहु दिन बरसाने नन्दगाम काहु दिन नन्द घर धायेंगे।

> छिद्रवन काहु दिन भद्रवन काहु दिन काहु दिन मधुवन वृन्दावन आवेंगे॥ प्रेमी कहै काहु दिन दाऊजी दरस करैं

काहु दिन गोकुल में यमुना नहावेंगे। गोवरधन राधाकुण्ड जतीपुरा गिरिराज

काहु दिन या चक्कर में श्रीकृष्ण मिल जायेंगे॥ इतना सुनकर बिशाखा सखी कहने लगी-हे

लिलता! यह तो कई दिनोंकी लम्बी यात्रा है, उस समयतक उनके विरहमें कैसे रह पायेंगे। अब एक सखीने श्रीराधारानीको संकेतकर कहा-हे प्रियाजी!

कामवन कोटवन नन्दगाम बरसाने गोवरधन राधाकुण्ड हम तौ न जायँगे। जाके गिरिराज ब्रजराज को न खोज कबूँ

माया सिन्धु माय भूल डुबकी न लगाएँगे॥

[भाग ८९

संख्या ३] 'प्रिय लागे मोहि	ब्रज की बीथिन' २९
**********************	*************************
गोकुल सुखरासी के वासी हैं हम करीम	अजहु हरिदेव की पौर सदा बेई नंद नगोर को घोर मचै।
गोकुल न पायें तो और कहाँ पायँगे।	तट चन्द्र सरोवर गोपिन के, रस रास भी नंदिकसोर रचै॥
मथुरा जी जावैं ना वृन्दावन धावें ना	सुचि मानसी गंग तरंगन में, किव नंदन बाँसुरी सोर जचै।
चित्त शुद्ध होवे तो यहीं मिल जायँगे॥	गिरिराज तरैठी में धेनु चरें, अरु सैल सिलान पै मोर नचै॥
इस सखीका कथन उस समय प्रमाणित हो गया,	जहँ गैयन ग्वालन टोल फिरें, मृग झुंडन में नित जोर जचै।
जब आस्था, निष्ठा और विश्वासके साथ सिखयोंके	नित अम्ब कदम्बन कुंजन में, सिरि कृषण कथान को सोर मचै॥
स्मरण करते ही श्रीश्यामसुन्दर उनके मध्य प्रगट हो गये।	जहाँ ब्यार में प्यार भरों मँहके, गिरिराज के ओर ते छोर रचै।
यही तो है ब्रजका माधुर्य! इसी रससे सराबोर एक सखी	जहँ कोयल के मृदु सोर उठे, सुन भाव विभोर हौं मोर नचै॥
कहने लगी—री सखियो!	मानसी गंग विराजत अंग में, देख तरंग मिलै सुख भारौ।
अरी यही तो मोहन के माधुर्य सुधा की है रसधार।	देवन कौहू जो देव बन्यौ, अस देवता हैं गिरिराज हमारौ॥
निःस्मृत होती है कलस्व से सुख सौरभ परिमल आगार॥	(कुम्हेरिया)
धन्य पुण्यमय ब्रजमण्डल भूमि, धन्य यह पावन देस।	इस प्रकार श्रीगिरिराजजीकी वन्दना और नमन
चिर नित नूतन लीला करते जहाँ प्राणपति मधुर ब्रजेश।।	करते हुए समस्त गोपियाँ चल पड़ीं श्रीवृन्दावनकी ओर।
कुञ्ज कुञ्ज की लता बेलि में बिखरा मृदु माधुर्य अपार।	चलते–चलते ब्रजके सौन्दर्यसे अभिभूत होकर एक सखी
एक एक कलि की आभा में होता प्रभु का नित्य बिहार॥	कहने लगी—देखो सिखयो!
थिरक रही है रूप माधुरी पल्लव पल्लव में साकार।	कितना भरा अतुल आकर्षण कितना गर्मित है माधुर्य।
खेल रहा है यहाँ मुदित हो, श्री सुषमा का मधु संसार॥	ब्रज में कण कण के अन्तर्गत कितना भाव भरित सौन्दर्य॥
इस प्रकार श्रीकृष्णके वैभव और माधुर्यकी चर्चा	इसी भाव-समाधिमें लीन गोपियोंने श्रीवृन्दावनमें
करते-करते साँझ ढलने लगी थी। अब श्रीकृष्णने	प्रवेश किया। उनमेंसे एक गोपी प्रेमावेशके वशीभूत
श्रीराधाको संकेत कर कहा—हे ब्रजेश्वरी! मैं वनमें	होकर इस प्रकार अपने मनोभाव प्रगट करने लगी—
अपने गैया-बछड़े चरते हुए छोड़ आया था,	एक ब्रज रेणुका पै चिन्तामनि वारि डारौ।
उन्हें सँभालनेके लिये जानेकी अनुमित प्रदान करें।	लौकन को वारौं, सेवा कुञ्ज के विहार पै॥
प्रियाजीकी सहमति प्राप्तकर कान्हा नन्दग्रामकी ओर	लतन की पातन पै, कल्पवृक्ष वारि डारौं।
प्रस्थान कर गये। इधर सखियाँ भी यमुनापुलिनपर	रम्भाहु को वारि डारौं, गोपिन के द्वार पै॥
अगले दिन भोर होते ही मिलनेकी आशामें अपने-	ब्रज पनिहारिन पै, शचि रति वारि डारौं।
अपने घरोंको लौट गर्यी। प्रात:काल पुनर्मिलनकी प्रतीक्षामें	बैकुण्ठहि वारि डारौ कालिन्दी घाट पै॥
रात्रि बीत गयी। प्रात:काल होते ही अपने घरका	कहै अभयराम एक राधेजू को जानत हौं।
काम-काज निबटाकर एक-एक कर वे सखियाँ निर्धारित	देवन को वारि डारौं नन्द के कुमार पै॥
स्थानपर एकत्रित हो गयीं।	और सचमुच ही सम्पूर्ण ब्रजमण्डल भगवान्
श्रीराधारानीसे परामर्शकर समस्त सिखयोंने ब्रज-	श्रीकृष्ण और उनकी आह्लदिनी शक्ति श्रीराधारानीकी प्रेममयी
दर्शनका निश्चय किया। इसी निश्चयके अनुसार श्रीराधा	लीलाओंकी वह अलौकिक धरा है, जहाँ पहुँचकर
और वे सिखयाँ हर्षोल्लाससे भरी चल पड़ीं गोवर्धन	मनुष्य असीम आनन्द और आनन्दके महासागरमें डूब
ग्रामकी डगरपर। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बड़े प्रेमसे	जाना चाहता है। इसी कारण ब्रजवासी सदैव गाते रहते
गिरिराजके दर्शन किये। उन्मेंसे एक सखी गिरिराज	
बाबाके वैभवका वर्णन करते हुए कहने लगी— ————	'प्रिय लागे मोहि ब्रज की बीथिन।' ▶◆◆
	-

मनका संयम (श्रीगौतमसिंहजी पटेल) कारण हमें सदा-सर्वदा, नित्य-निरन्तर परमात्म-चिन्तन प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः। मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥

ही करते रहना चाहिये। जिसका मनपर अधिकार है, वह 'नियतमानसः'

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः। शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥ है। साधक 'नियतमानस' तभी हो सकता है, जब उसका मन-मस्तिष्क केवल-और-केवल परमात्मामें ही लगा (गीता ६। १४-१५) रहता है, परमात्माके अतिरिक्त और किसीमें नहीं लगा रहता। जबतक उसका सम्बन्ध सांसारिक पदार्थोंके साथ बना रहता है, तबतक उसका मन नियत नहीं हो सकता।

जिसका अन्त:करण शान्त है, जो भयरहित है और जो ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित है, ऐसा सावधान योगी 'मनका संयम' करके मुझमें चित्त लगाता हुआ मेरे परायण होकर बैठे। वशमें किये हुए मनवाला योगी इस प्रकार आत्माको निरन्तर मुझ परमेश्वरके स्वरूपमें लगाता हुआ मुझमें रहने-वाली परमानन्दकी पराकाष्ठारूप शान्तिको प्राप्त होता है। मनः संयम्य अर्थात् 'मनका संयम' करके उसे मुझमें ही लगा दे। इसका तात्पर्य यह है कि सांसारिक वस्तु,

व्यक्ति, परिस्थिति, घटना आदिको लेकर मन-मस्तिष्कमें जो संकल्प-विकल्परूपसे चिन्तन-मनन होता है, उससे मनको मोडकर एक मुझमें ही लगाता रहे। दूसरे शब्दोंमें मनको संसारकी ओरसे मोड़कर केवल मेरे स्वरूप-चिन्तन, मेरी लीला, गुण, महिमा, प्रभाव आदिके चिन्तन-मननमें ही लगा दे। मन-मस्तिष्कमें जो कुछ भी चिन्तन-मनन होता है, वह प्राय: भूतकालका होता है तथा कुछ भविष्यकालका भी होता है और वर्तमानमें साधक अपना मन परमात्मामें लगाना चाहता है। भूतकालकी बात, भविष्यकालकी बात और वर्तमानकालकी बात घटना, वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति आदि तीनों अभी नहीं है। जिस संसारका चिन्तन हो रहा है, वह पहले नहीं था, पीछे नहीं रहेगा और अभी भी नहीं है। लेकिन जिन परमात्माका चिन्तन करना है, वे परमात्मा पहले भी थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे। इसलिये सांसारिक वस्तुओंसे हटाकर मनको परमात्मामें लगा देना चाहिये; क्योंकि भूतकालका कितना ही चिन्तन किया जाय, कोई लाभ नहीं तथा भविष्यकालका करना मेरा परम लक्ष्य है, सांसारिक ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करना मेरा कोई उद्देश्य नहीं। इस भाँति अहंताका परिवर्तन होनेपर मन स्वाभाविक ही नियत हो जायगा। जो कोई मनुष्य विवेकशील बुद्धिरूप सारथीसे सम्पन्न और मनरूप लगामको वशमें रखनेवाला है, वह संसार-मार्गके पार पहुँचकर परब्रह्म पुरुषोत्तमके उस सुप्रसिद्ध परम पदको प्राप्त हो जाता है। जैसे दुष्ट घोड़ोंसे जुते हुए रथको अच्छा सारथी बडी सावधानीसे चलाकर

अपने गन्तव्य स्थानपर ले जाता है, वैसे ही साधकको

साधक अपने-आपको ध्यानी ही माने। मैं तो केवल

ध्यानी हूँ और ध्यानके माध्यमसे ही परमात्माकी प्राप्ति

चाहिये कि बड़ी सावधानीके साथ अपने मनको वशमें रखे, जिससे योग-साधनमें किसी प्रकारका विघ्न न आने पाये और वह परमात्माकी प्राप्तिरूप लक्ष्यपर पहुँच जाय। जिसका दुरतक दौड लगानेवाला और अनेक विषयोंकी ओर जानेवाला कामनायुक्त संशयात्मक मन भलीभाँति वशमें हो जाता है, वह मनुष्य इहलोकमें और परलोकमें भी सुखी होता है। जिन्होंने अपने मनको वशमें नहीं किया है, वे विभिन्न विषयोंकी ओर प्रेरित हुई दुर्निवार्य इन्द्रियोंद्वारा आत्माका साक्षात्कार नहीं कर सकते। यम, नियम, दान, स्वधर्मपालन, वेदाध्ययन, सत्कर्म

और ब्रह्मचर्य आदि श्रेष्ठ व्रत-इन सबका अन्तिम फल

कितना भी चिन्तन किया जाय, वह काम अभी होगा नहीं यही है कि मन एकाग्र हो जाय, भगवान्में लग जाय। और भूत-भविष्यका चिन्तन करते रहनेसे वर्तमानका ध्यान मनका समाहित हो जाना ही परम योग है। सभी इन्द्रियाँ तो होगा नहीं। इसका आशय यह है कि सब ओरसे हाथ मनके वशमें हैं। मन किसी भी इन्द्रियके वशमें नहीं है। खाली-का-खाली ही रहेगा। निष्कर्ष यह है कि हमारा यह मन बलवान्से भी बलवान्, अत्यन्त भयंकर देव है। Hinduism Discord Server https://dsc.ag/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharkar लक्ष्य परमात्म-चिन्तन ही है, सासारिक चिन्तन नहीं डिस जी इसकी अपने वशमें कर लेता है, वहीं यथार्थमें खाली-का-खाली ही रहेगा। निष्कर्ष यह है कि हमारा

संख्या ३] सेवा-धर्म इन्द्रियोंका विजेता है। मनको निरोग हुआ तब जानना इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं, वह परमात्माको प्राप्त नहीं कर चाहिये, जब हृदयमें वैराग्यका बल बढ़ जाय, उत्तम सकता। वस्तुतः इन्द्रियोंके विषयोंकी ओरसे मनकी प्रवृत्तिको रोककर उसे सत् प्रवृत्तियोंमें लगाना ही 'मनका बुद्धिरूपी भूख नित नयी बढ़ती रहे और विषयोंकी आशारूपी दुर्बलता मिट जाय। मनको वशमें करके संयम' है। बिना संयमका आश्रय लिये किसी भी एक-श्रीभगवान्की ही सेवा करनी चाहिये। इसीसे साधकको मुक्ति नहीं मिल सकती। मनका असंयम जन्म-मरणके नाशरूप परमार्थरूपी परम फल मिलता विपत्तियोंका मार्ग है और उसे अपने वशमें कर लेना है। अर्थात् वह भगवान्को प्राप्त हो जाता है। सुख-सम्पत्तियोंका मार्ग है। मानसिक असंयम आपदाओंका 'संयम' अथवा 'मनका संयम' शब्द अथवा और मानसिक संयम सम्पदाओंका प्रमुख अंग है। सकल शब्दसमूह मनोनिग्रह, चित्तवृत्तिनिरोध, आत्मनियन्त्रण, विषयोंकी आशाका भी त्याग कर देना 'मनका संयम' बुराईसे बचनेकी क्रिया तथा योगके क्षेत्रमें ध्यान, धारणा है। मनोनिग्रहरहित साधन व्यर्थ हो जाता है, इससे और समाधि तीनोंका वाचक है। मनको विषयोंसे परमेश्वरकी प्राप्ति नहीं हो पाती। मनोनिग्रहसे ही इस हटाकर संयमाग्निमें झोंकनेवाले साधक अपेक्षाकृत अधिक भवसागरको पार किया जा सकता है। अतएव परब्रह्म-समयतक परमात्मयुक्त रहते हैं। जिसकी मन और प्राप्तिहेतु 'मनका संयम' नितान्त आवश्यक है। सेवा-धर्म (डॉ० श्रीनरेशकुमारजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०) 'सेवा' यह शब्द कहनेमें बहुत सरल तथा प्रिय जाता है। इसे ही भगवान् कृष्णने गीतामें निष्कामकर्म प्रतीत होता है, परंतु आचरणमें सेवा-कार्य तलवारकी कहा है, जिस सेवा-धर्मका पालन करते हुए मनुष्य कर्मके धारपर चलनेके समान कठिन है। महाराज भर्तृहरिने बन्धनमें नहीं बँधता—'कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् कहा है—'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः' करोति सः' (गीता ४।२०)। त्याग-भाव अथवा (नीति० ५८) अर्थात् सेवाधर्म परम गहन है, कष्टसाध्य निष्कामकर्मकी प्रवृत्तिके बिना कभी भी मनुष्यमें सच्ची है, योगी भी सेवा-धर्मका पालन बड़ी कठिनतासे ही कर सेवाकी भावना नहीं आ सकती। यजुर्वेदके चालीसवें पाते हैं, परंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं लिया जाना अध्यायके पहले दो मन्त्रोंमें भगवान् स्वयं स्पष्टरूपसे कहते हैं—'…त्यक्तेन भुञ्जीथाः'—'कुर्वन्नेवेह कर्माणि चाहिये कि सेवा-धर्मका पालन किया ही नहीं जा जिजीविषेच्छतः समाः। एवं त्विय नान्यथेतोऽस्ति न सकता, अवश्य किया जा सकता है, केवल थोड़ेसे कर्म लिप्यते नरे ' अर्थात् संसारके पदार्थींका त्यागपूर्वक प्रयास और अभ्यासकी आवश्यकता है। 'सेवा' शब्दके परिचर्या, उपासना, भक्ति, पूजा, भोग करते हुए मनुष्य जो भी कर्म करता है, वे कर्म सेवाभावसे, त्यागभावसे, परोपकारकी भावनासे तथा यज्ञकी भावनासे आराधना आदि अनेक पर्याय हैं। वैष्णवोंके वैरागी सम्प्रदायमें भगवान्के नामोंके पीछे 'दास' लगाकर सीतारामदास, प्रेरित होनेके कारण उस मनुष्यमें लिप्त नहीं होते। उसके रघुबीरदास, राघवदास, भरतदास, तुलसीदास तथा सूरदास वे कर्म शरीरकी स्वाभाविक चेष्टामात्र बनकर रह जाते हैं, आदि कहनेकी जो परम्परा चली आयी है, वह इस दास-उन कर्मोंसे मनुष्यके मनमें कर्मकी वासना उत्पन्न नहीं भक्ति या सेवावृत्तिसे ही सम्बन्धित है। आजकल 'सेवावृत्ति' होती और यह वासना ही जन्म-मरणके चक्रमें मनुष्यको शब्द नौकरी-व्यवसायके लिये भी प्रयुक्त होने लगा है। डालती है, अत: इस प्रकार सेवाभावसे किये गये ये पर 'सेवा' का एक अन्य अर्थ भी है, नि:स्वार्थभावसे निष्कामकर्म अन्तत: मनुष्यको संसार-सागरसे पार उतारनेवाले किसी असहायकी 'तन-मन-धनसे—मनसा-वाचा-कर्मणा' बन जाते हैं और उसे मुक्तिके द्वारतक पहुँचा देते हैं। सहायता करना। यहाँ हमारे विचारका सम्बन्ध इसी अर्थवाले आश्चर्य है कि जिन सेवाकार्योंको करते हुए हम 'सेवा' शब्दसे है। जिसे लोकमें 'परोपकार' भी कहा अपने लिये कुछ नहीं चाहते, पुनरिप हमें वह सब कुछ

भाग ८९ *********************** अपने-आप मिल जाता है, जिसके लिये योगी लोग अपना श्रद्धापूर्वक भगवद्भावना रखनेसे ही वह सेवा याज्ञिक क्रिया सर्वस्व योगसाधनामें समर्पित करते हैं। हम कुछ नहीं बन सकती है और तब वह ब्रह्मार्पणकी दृष्टिसे ब्रह्माग्निमें माँगते, परंतु प्रभु सब कुछ दे देते हैं। जहाँ बिना माँगे दी गयी आहृतिके समान फलदायक होकर सीधे ब्रह्मतक मोती मिले फिर ऐसे सेवाकार्योंसे क्यों विमुख रहा जाय, पहुँचा सकती है। गौ, विद्वान्, ब्राह्मण, सन्त, महात्मा, उन्हें तो और भी उत्साहसे तथा प्रयत्नसे करना चाहिये। माता-पिता, अतिथि और गुरु आदिकी सेवा तो सर्वथा सेवाभावी मनुष्य नि:सन्देह सम्पूर्ण समाजका हितैषी भगवद्भावसे की जानी चाहिये। एक क्षण भी उनमें भगवान्से भिन्न दृष्टि नहीं रखनी चाहिये और सत्य भी यही है कि तथा आदर्श होता है। उसका जीवन अपने अथवा अपने भगवान् ही कृपा करके गौ, ब्राह्मण, सन्त आदिके रूपमें परिवारतक ही सीमित नहीं होता, उसके लिये तो सारी पृथ्वी ही उसका परिवार होती है—'उदारचरितानां तु सेवाका सौभाग्य प्राप्त कराते हैं, इसीसे मानसमें— वस्धेव कुटुम्बकम्'- 'उदारचित्त मनुष्योंके लिये तो सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।। सारी पृथ्वी ही उसका कुटुम्ब है।' सारा संसार ही (313813) उसका मित्र है, उसके लिये कौन अपना और कौन तुम्ह तें अधिक गुरिह जियँ जानी। सकल भायँ सेविहं सनमानी॥ पराया? सब उसके हैं और वह सबका है। 'सर्वा (२।१२९।८) —ऐसे कथनोंकी बार-बार आवृत्ति होती आयी है। आशा मम मित्रं भवन्त्' तात्पर्य यह कि सभी दिशाओंमें उसके मित्र-ही-मित्र होते हैं, शत्रू कोई नहीं सेवाभावसे समर्पित जीवनके द्वारा आपका हृदय होता। वह तो सदा सब प्रकारसे सबका हित ही चाहता इतना निर्वेर, पवित्र, विशाल और उदार होगा कि उसमें आप समस्त संसारके दु:खोंको समेटकर उनकी झोली

उसका ामत्र ह, उसक ालय कान अपना आर कान पराया? सब उसके हैं और वह सबका है। 'सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु' तात्पर्य यह कि सभी दिशाओंमें उसके मित्र–ही–मित्र होते हैं, शत्रु कोई नहीं होता। वह तो सदा सब प्रकारसे सबका हित ही चाहता है और केवल चाहता ही नहीं, अपितु अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार उनका हित–सम्पादन भी करता है। मनुष्य संसारका सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहलाता है। उसकी श्रेष्ठता केवल तर्क–वितर्ककी क्षमतापर ही निर्भर नहीं करती, अपितु इस बातपर निर्भर रहती है कि वह संसारके अन्यान्य प्राणियोंके—इतर मनुष्यों, पशु और पिक्षयोंके कितने काम आ सकता है, उनकी कितनी सेवा कर सकता है। तिनक प्रभुकी सृष्टिकी ओर निहारिये, सर्वत्र सेवा–ही–सेवा दिखायी पड़ेगी, सूर्य अपनी किरणोंको फैलाकर अन्धकारको ही दूर नहीं करता, अपितु अनेकविध अन्नों

और वनस्पतियोंके उपजानेमें भी सहायक होता है। इसीसे

सभीका जीवन जीवन्त होता है। क्या नदी, वृक्ष, लता,

पर्वत-सभी परिहतमें नहीं लगे हुए हैं ? यही तो प्रभुका

यज्ञ है। आइये, आप भी इसमें सम्मिलित हो जायँ, अपनी

आहृति भी इसमें डाल दें। नि:सन्देह आपकी आहृति विफल

नहीं जायगी। दीन-दुखियोंके अंग बननेमें आपका दिया

जायगा। फिर आप अनुभव करेंगे—
अयुतोऽहमयुतो मे आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतम्।
मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः॥
'मैं अब असीम बन गया हूँ, मेरा आत्मा असीम
हो गया है। मेरे नेत्र, मेरे कान, मेरे प्राण, मेरा अपान,
मेरा व्यान—सभी अंग-प्रत्यंग संकुचित परिधिसे निकलकर

असीम, विशाल, अपार और उदार हो गये हैं। मेरा रोम-

योग्य नहीं है। उसकी अनुभूति तो सेवा-फलको

चखनेपर ही होगी। भले काममें देरी कैसी? आइये, और

सुखोंसे परिपूर्ण कर देना चाहेंगे। आपका व्यक्तित्व

संकुचित सीमाओंको पार करके असीम और महान् बन

रोम अब विश्वकल्याण और परिहतमें सार्थक हो रहा है। मैं अब केवल स्वयंतक सीमित नहीं हूँ, अपितु विश्वरूप हो गया हूँ।' नि:स्वार्थ सेवामें कितना आनन्द है, कितना सुख है और कितना सन्तोष है? यह शब्दोंमें वर्णन करने

गया एक-एक क्षण आपको अपार सन्तोष देगा। दीन- निराश्रयोंके आश्रय बनकर नि:स्वार्थ-भावसे अपने तन-दुखियों और असहायोंकी सेवासे आपको वह परम आनन्द मन-धनको असहायोंकी सहायतामें लगा दीजिये। सेव्य-मिलेगा, जिसके लिये योगियोंको भी कठोर तप करने पड़ते सेवकभावसे, दास्य-दासभावसे पूज्य-पूजकभावसे प्रभुके हैं। दीन-दुखियोंमें हीनताकी भावना न होकर सच्ची प्रभुमय सेवा-धर्ममें सम्मिलित हो जाइये।

संख्या ३]	निम्बार्क-सम्प्रदा	ायकी सेवा-भक्ति ३३					
**************************************	<u> </u>	********	<u> </u>	£ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$: 55 55 55 55 55 55 55 55 55 55 55 55 55	<u> </u>	
निम्बा	र्क-सम्प्रदा	यकी सेवा	⊢भ त्ति	त			
7)	io श्रीरामस्वरूपजी	गौड़ 'निम्बार्कभूषा	π')				
अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा		प्रवृत्तियोंमें प्रवृत्त है। जीवको अज्ञानसे जो ये कर्मबन्धनक					
्विराजमानामनुरूपसौभगाम् विराजमानामनुरूपसौभगाम्	Į	आवरण हो र					
सखीसहस्त्रैः परिसेवितां सदा		उपासनासे ही निरावृत होगा।					
स्मरेम देवीं सकलेष्टव	जामदाम् ॥	नान्या	गति:	कृष्णपदारि	त्रन्दात्		
5)	त्रेदान्तकामधेनु ५)		सदृश्य	ते ब्रह्मशि	वादिवन्दितात	ĮΙ	
अर्थात् जो श्यामसुन्दर श्रीकृष	गके वामांगमें	भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-					
प्रसन्नतापूर्वक विराजमान हो रही हैं,	जिनका रूप-	दिचन्त्यशक्तेरिवचिन्त्यसाशयात्।।					
शील-सौभाग्य अपने प्रियतमके सर्वथ	ा अनुरूप है,				(वेदान्तक	ामधेनु ८)	
सहस्रों सखियाँ सदा जिनकी सेवाके लि	ाये उद्यत रहती	अर्थात् '	ब्रह्मा औ	र शिव आदि	देवेश्वर भी	जिनकी	
हैं, उन सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको	देनेवाली देवी	वन्दना करते हैं	हैं, जो भ	क्तोंकी इच्छावे	_ह अनुसार पर	एम सुन्दर	
वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका हम सदा स्म	रण करें।	एवं चिन्तन करनेयोग्य लीलाशरीर धारण करते हैं, जिन				, जिनकी	
जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यजीने नित्यि	कुंज वृन्दावनमें	ं शक्ति अचिन्त्य है तथा जिनके अभिप्रायको उनकी कृपावे					
सखीभावसे सेवित युगल प्रभु राधाकृष्ण		बिना कोई नह			•		
परम सुखानन्दकर तथा प्राप्त्यर्थ निर्देशित		सिवा जीवर्क	- •				
प्रेमप्रवण वृन्दावननिकुंज एवं परम प्रेम				छानुरूप भग	`		
अधिष्ठात्री देवी पराश्री राधाजी हैं। अ		अवतार-विग्र		_	-		
सेवा तथा कृपासे ही वृन्दावननिकुंजमें सखी	-	श्रीराधाकृपाके					
भाव प्रवाहित होता है। उन्होंने श्रीकृष्		निकालकर अ			-		
लिये वृषभानुजा श्रीराधाजीकी भक्तिका स		है। श्रीसर्वेश्वर कृष्ण ब्रह्मा-शिव आदि समस्त देवताओंके					
श्रीराधाष्टकके फलितार्थ श्लोकमें कहा		भी वन्दनीय है					
सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष	गधाम्नि ।	हमें इन्हीं श्री	कृष्णकी	उपासनाका	निर्देश किय	त है।	
सखीमूर्तयो युग्मसेवा	नुकूलाः॥	उपास्यस		ादुपासकस्य			
	(राधाष्टकम् ९)		-	लं भक्तिरस		ίι	
श्रीप्रियाजीकी कृपासे दिव्य धा		विरोधिन		रूपमथैत			
सखीस्वरूप भावसे युगल सरकार १			र्ज्ञेया इ	मेऽर्था अपि प	ग्ञ्च साधुभ <u>ि</u>	: II	
अन्तरंगसेवाका सौभाग्य मिलेगा। युगल सर		•			(वेदान्तकाम	•	
साधनेके लिये श्रीनिम्बार्काचार्यजीने भगवत्	•	•		य परमात्मा			
साधनाके संकेत किये हैं। प्रभुके प्रति हार्गि		उनके उपास			`	-	
गुरुप्रदत्त भगवद्भक्तिमार्गसे हरिशरणागत							
जप,भजन, प्रभुलीला, स्मरण, ध्यान तथा ए	•	विरोधीभावका		–इन पाँचका	ज्ञान श्रेष्ठ स	ाधकोंको	
भावप्रवृत्तियोंकी निरन्तर स्वाभाविक स्थिति	हो जानेसे राधा-	प्राप्त करना		^		^	
माधवका हार्दिक रसभाव सिद्ध होगा।	0.00			मान्यतः ईश्वर			
जीव अनादि मायासे युक्त होनेसे जी	सदाचार, दया, विनय, सहिष्णुता, कर्तव्य एवं मर्यादानिर्वाहको						

भाग ८९ धर्म कहा गया है। इन धर्मतत्त्वोंको मनीषियोंने विशद सप्तमि प्रेम हिये विरधावें। अष्टमि रूप ध्यान गुन गावें।। रूपसे व्याख्यायित किया है। यह श्रेय कर्म ही जगजीवनकी नविम दृढ्ता निश्चै गहिबे। दसमी रसकी सरिता बहिबे।। सुखद समृद्धि करते हैं। इसके विपरीत व्यक्तिगत स्वार्थपरायण या अनुक्रम करि जे अनुसरहीं। सनै सनै जगतें निरबरहीं॥ परमधाम परिकर मधि बसहीं। श्रीहरिप्रिया हितू संग लसहीं॥ कर्म, झुठ, चोरी, अनाचार, व्यभिचार, ठगी, हिंसा, क्रूरता आदि अनाचार कहे गये हैं, जो पतनकारक हैं। जिनको परम प्रेमपथमें आगे बढ्ना है, उन्हें हरिअनुरागी परम रिसक सन्तका आश्रय लेकर रसरसेश्वर जो कोई प्रभु के आश्रय आवै। सो अन्याश्रय सब छिटकावै॥ परम प्रभु राधा-कृष्णके भजनका अधिकार लेना चाहिये। विधि-निषेध कें जे जे धर्म। तिनिकों त्यागि रहें निष्कर्म॥ वस्तुतः मनुष्यद्वारा यथायोग्य स्थितिसे ऊहापोह, इस अधिकारी रसिकको परम भागवतभक्त रसिकजनोंकी संकल्प-विकल्परहित निष्काम भावसे धर्मका व्यवहार सतत सेवा करनी चाहिये। हृदयमें सरलता, तरलता, ही भगवान्की प्रथम सेवा है। निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर नम्रता, करुणा, दया आदि गुण स्वभावतः धारण करने श्रीहरिव्यास देवाचार्यजीने महावाणीमें सामान्य मानवधर्मसे चाहिये। इस दैन्यतापूर्ण परम प्रेमप्रवण वैष्णवधर्मसे लेकर श्रीवृन्दावनधामनिकुंजके सेवा-परिकरतकके सेवा-सहज सुनिष्ठा स्थापित होती है। तब भगवद्-भागवत क्रमको व्यक्त किया है, जिसके पालनेसे मनुष्य वृन्दावन-लीला-कथाको अनुरागसे सुननेकी लालसा उत्पन्न होती धाममें राधामाधवकी सेवाका सान्निध्य पा सकता है— है। परम प्रभुके पद-पंकजमें हार्दिक अनुराग होने लगता है। भक्त तथा भगवान्के लीलास्वरूपकी झलकियाँ झुठ-क्रोध-निन्दा तजि देहीं। बिन प्रसाद मुख और न लेहीं॥ प्रवृत्त होने लगती हैं। हृदयमें श्यामा-श्यामके प्रेमका सब जीवनि पर करुना राखें। कबहुँ कठोर वचन नहिं भाखें।। मन माधुर्य-रस माहि समोवें। घरी पहर पल वृथा न खोवें।। सागर उमड़ने लगता है और आठवें स्तरपर भगवान्के वास्तविक लीलास्वरूप तथा गुणमाहात्म्यका ध्यानमें सतगुरुके मारग पगु-धारें। हरि सतगुरु बिचि भेद न पारें॥ दर्शन होने लगता है। इस क्रमसे शनै:-शनै: भगवान्में ए द्वादश-लच्छिन अवगाहें। जे जन परा परम-पद चाहें॥ प्रथम चरणमें लौकिक जगत्में रहते हुए सेवाभक्तिके स्वाभाविक भाव स्थापित होते-होते संसारसे अनासिक प्राथमिक व्यवहार हैं। प्रभुमें आश्रय चाहनेवाले प्रभुमें तथा निर्भयता हो जाती है। संसारके सम्बन्ध छूट जाते अनन्य भाव धारण करें। संकल्प-विकल्परहित निष्काम हैं और परम धाम वृन्दावननिकुंज श्रीश्यामा-श्यामके कर्म करें। झूठ, क्रोध, निन्दा, छल, कपट, हिंसा और सेवा-परिकरमें प्रवेश प्राप्त हो जाता है। अहंकारको छोड़ें, प्रभु-अर्पित प्रसादी ग्रहण करें। सब निम्बार्क-सम्प्रदायके परम्परागत पीठाचार्य तथा अनुगत भक्तरसिकोंने सामाजिक जीवनमें मानवसेवाधर्मसे जीवोंपर करुणाका भाव रखें। कभी किसीके प्रति कठोर वचन न बोलें, प्रसन्नचित्त मधुर व्यवहार करें, व्यर्थ लेकर परम प्रेमकी आध्यात्मिक गहनतातक सेवाभक्तिका समय न खोयें, अपने कर्तव्यकर्म हरिभजन तथा सत्कर्म अवलम्बन किया है और जीवनमें भगवत्प्राप्तिरूप परम परमार्थको प्राप्त किया है। इनमेंसे कइयोंने साहित्यिक करते रहें। सद्गुरुका आश्रय लें, सद्गुरुको हरिका अनन्य तथा अन्तरंग परिकर समझें, परम प्रेम चाहनेवालोंको अभिव्यक्ति तथा विशिष्ट अनुभव वचन कहे हैं। श्रीकेशव काश्मीरी भट्टाचार्यजी, श्रीभट्टजी, श्रीहरिव्यास इन बारह सेवा-लक्षणोंका अनुपालन करना है। महावाणीमें पुन: कहा गया है-देवाचार्यजीने अपने वाणी-साहित्यमें वृन्दावननिकुंज राधा-जाकें दस पैडी अति दृढ़ि है। बिन अधिकार कौन तहाँ चढ़ि है।। माधवकी अन्तरंग सेवाभक्तिका दर्शन कराया है। स्वामी श्रीपरशुराम देवाचार्यजीने अपने साहित्यसागरसे लौकिक पहले रिसक जनन को सेवें। दूजी दया हिये धरि लेवें॥ जीवनमें धर्म तथा निकुंजभवनतककी सेवाका मार्गदर्शन तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि है। चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनि है।। ु Hinduism Discord Server https://dsc.og/dharman | श्लाविक्यां स्वापिति क्रिक्त विकास करते । श्लाविक्य प्राप्त संख्या ३] भारतीय कलाके प्रतिमानोंमें शिवलिंग और भगवान शिव देवाचार्यजी तथा जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीश्रीजी श्रीश्यामा-श्याम श्रीराधाकृष्ण-निकुंजबिहारीके श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजीने मानवीय धर्म-उपदेशके निकुंज-भावस्थ मन्दिरोंमें श्रीविग्रहकी सेवाटहल अपने-साथ राधामाधवके निकुंजरसका पान कराया है। अपने सेवादायित्वके अनुसार नित्यप्रति अष्टयाम की जाती है, जो मन्दिरोंके अष्टयाम सेवाप्रवृत्तिमें प्रचलित है। सखीभावको धारणकर अन्त:-बाह्य प्रवृत्तिसे श्रीराधाकृष्णके सेवास्मरणमें लगे रहना तथा अपने-वर्षके परम्परागत व्रतोत्सव अपने-अपने स्तरपर अपने परिवेशसे सामंजस्य बैठाकर लौकिक जीवनमें हार्दिक भावसे वैष्णवोंद्वारा सम्पन्न होता है। मर्यादाका निर्वाह करना—यही निम्बार्क-परम्पराका निहित इस तरह निम्बार्कसम्प्रदायमें सनातनधर्म और वैष्णवपरम्पराका सेवाधर्म प्रतिष्ठित है। उद्देश्य है। भारतीय कलाके प्रतिमानोंमें शिवलिंग और भगवान् शिव (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीराजेशजी उपाध्याय नार्मदेय, एम० ए०, पी-एच० डी०) भगवान् शिव अनादि देवता हैं। ये अत्यन्त (२) संहार-मूर्ति, (३) गजासुरसंहार-मूर्ति, (४) कालारि महिमाशाली एवं रहस्यमय देव हैं। शिव अपनी भक्तप्रियता, संहार-मूर्ति, (५) त्रिपुरान्तक-मूर्ति, (६) शरभेश-मूर्ति, दयालुता, सर्वकल्याणकारिता आदिके रूपमें हमारे सामने (७) अन्धकान्त-मूर्ति आदि। अति प्रसिद्ध रहे हैं और सर्वदा रहेंगे। भैरव-मूर्तिका वर्गीकरण इस प्रकार हुआ है-देवप्रतिमाओंका धर्मसे बडा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। (१) सामान्य-भैरव, (२) बटुक-भैरव, (३) शिव प्राचीन देवोंमें सबसे प्राचीन हैं। प्राचीन सभ्यताके जो स्वर्णाकर्षण-भैरव, (४) चतुष्पट-भैरव, (५) वीरभद्र-अवशेष भूगर्भ-खुदाईमें प्राप्त हुए हैं, वे शिवलिंग एवं भैरव, (६) जालन्धर, (७) अघोर मूर्ति आदि। शिवसे सम्बन्धित प्रतिमाएँ ही हैं। मोहनजोदडोसे प्राप्त लिंग-प्रतिमा—(१) चलमूर्तियाँ, (२) मृण्मय मृहरपर शिवकी ही मूर्ति है। इसमें पशुपतिनाथ शिव पशुओंसे मूर्तियाँ, (३) लौहज मूर्तियाँ, (४) रत्नज मूर्तियाँ, (५) घिरे हुए हैं। सिन्धु घाटीके लोग लिंगपूजासे परिचित थे। दारुज मूर्तियाँ, (६) शैलज मूर्तियाँ, (७) क्षणिक मूर्तियाँ। **अचल मृर्तियाँ**—(१) स्वयम्भू, (२) दैविक, (३)

मुहरपर शिवकी ही मूर्ति है। इसमें पशुपितनाथ शिव पशुओंसे घिरे हुए हैं। सिन्धु घाटीके लोग लिंगपूजासे पिरिचित थे। वैदिक रुद्र ही शिवके स्वरूप हैं। सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशान शिवके ये पाँच रूप हैं। महाकाव्योंके युगमें शिवकी उपासना लोकप्रिय हो चुकी थी। उज्जैनके आहत सिक्कोंमें शिव-लिंगोद्भव मानव-रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय कलामें शैव-प्रतिमाओंका वर्गीकरण इस प्रकार हुआ है—

रूप-प्रतिमाओंमें शान्त या सौम्य मूर्तियाँ और

शान्त या सौम्य मूर्तियाँ—(१) अनुग्रह-मूर्ति,

अशान्त या उग्रमूर्तियाँ—(१) कामान्तक-मूर्ति,

लिंग-प्रतिमाओंमें अशान्त या उग्र मूर्तियाँ आती हैं।

(२) नृत्य-मूर्ति, (३) दक्षिण-मूर्ति, (४) कंकाल

भिक्षाटन या शिरच्छेद-मूर्ति, (५) विशिष्ट मूर्तियाँ,

(६) पौराणिक तथा दार्शनिक मूर्तियाँ।

१. रूप-प्रतिमा, २. लिंग-प्रतिमा।

आर्ष, (४) दानव, (५) मानुष, (६) लिंगपीठ आदि। इन मूर्तियोंका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—अनुग्रह-मूर्तियाँ शिवका कल्याणकारी शान्त रूप प्रदर्शित करती हैं। अनुग्रह-मूर्तियोंमें एक हाथको अभय और दूसरेको वरद मुद्रामें बतलाया जाता है—शिव अपने भक्तोंको वरदान देते हैं। इस मूर्तिकी यह विशेषता होती है कि इसमें शिव पार्वतीके पासमें खड़े होते हैं। वरदान पानेवाले भक्तकी कथा भी इसमें पत्थरोंमें शिवके साथ उकेरी गयी है। अनुग्रह

मूर्तियाँ शिवकी कई प्रकारकी हैं-जैसे-(१) विष्ण्-

अनुग्रह, (२) किरातार्जुनीय-अनुग्रह, (३) रावणानुग्रह,

वधके लिये विष्णुको चक्र प्राप्त करते दिखाया गया है।

विष्णु-अनुग्रह मूर्तिमें शिवकी कृपासे असुरोंके

(४) चण्डेश-अनुग्रह, (५) विघ्नेश-अनुग्रह।

विशिष्ट मूर्तियोंको दो भागोंमें बाँट सकते हैं-विष्णुने पूजामें एक कमल घट जानेपर अपना एक नेत्र निकालकर शिवको अर्पित किया था। यह दृश्य कांजीवरम्के (१) पौराणिक, (२) दार्शनिक मूर्तियाँ। केदारनाथ मन्दिर एवं मथुराके एक मन्दिरमें देखनेयोग्य है। पौराणिक मूर्तियोंके अन्तर्गत गंगाधरमूर्ति एवं अर्धनारीश्वरकी मूर्ति आती है। एलोरा, एलीफेण्टा तथा अर्जुन-अनुग्रहमूर्तिमें महाभारतके किरातार्जुन-युद्धकी कथाका अंकन हुआ है। अर्जुनने कौरवोंको परास्त बादामीके गुफा-मन्दिरोंमें यह मूर्ति मिलती है। हरिहरमूर्ति करनेके लिये घोर तपस्याद्वारा पाशुपत-अस्त्रकी प्राप्ति शिव एवं विष्णुकी एकात्मक सत्ताका प्रतीक है। की। किरातवेषधारी शिवसे अर्जुनका युद्ध हुआ था। एक भव्य हरिहर प्रतिमा बादामीमें मिलती है। एलोराकी रावण-अनुग्रहमूर्तिमें कुबेरको जीतकर रावण जब लंकेश्वर-गुफामें एक हरिहरकी मूर्ति है, वृषभवाहन लंका लौट रहा था, उस समयका चित्रांकन है। कैलास-मूर्ति तो प्रसिद्ध ही है। कल्याणसुन्दर मूर्तिमें शिव-शृंगके पास उसे एक मनोहर उद्यान दिखायी दिया। वहाँ पार्वतीके विवाहसे सम्बद्ध अनेक दृश्योंको दिखलाया गया है। इस मूर्तिमें शिव-पार्वतीका हाथ पकड़े हुए

विहार करनेकी इच्छा उसके मनमें उठी, पर उसके निकट पहुँचनेपर उसका विमान टस-से-मस नहीं हुआ। निन्दिकेश्वरने बताया—उमा-महेश्वर पर्वतपर विहार कर रहे हैं और किसीको वहाँसे निकलनेकी अनुमति नहीं है। यह सुनकर रावण ठहाका मारकर हँसा और शिवजीकी हँसी उड़ायी। नन्दिकेश्वरने उसे शाप दिया कि उसीकी आकृतिवाले वानरोंसे उसका नाश होगा। रावणने अपनी बीसों भुजाओंसे पर्वत उखाड़नेकी कोशिश की और पर्वत उठा लिया। घबराकर भगवती उमा शिवसे लिपट गयीं। शिवजीने अपने पैरके अँगूठेसे न केवल पर्वतको दबाया; बल्कि रावणको भी उसके नीचे दबा दिया। रावणकी आँखें खुर्लीं, उसने एक हजार वर्षतक रोते हुए शिवकी आराधना की। इस कारणसे उसका नाम रावण पड़ा। यह मूर्ति एलोराके दशावतार मन्दिरमें प्राप्त होती है। मैसूर राज्यके वैलूरके कचनेश्वर स्वामीके मन्दिरमें तथा एलीफेण्टाके सामनेकी मुख्य गुफामें भी रावणानुग्रह मूर्ति है। चण्डेश-अनुग्रह मूर्तिका सम्बन्ध दक्षिण भारतके चोलदेशके एक गाँवके निवासी यज्ञदत्तके पुत्र विचारशर्मा

चण्डेशपर अनुग्रहसे है। पिताद्वारा बालूके शिवलिंगपर ठोकर मारनेपर शिवका अपमान न सहकर उसने पिताका पैर कुल्हाड़ीसे काट दिया। शिवने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया एवं उसे अपने गणोंमें प्रमुख स्थान दिया। शिवकी प्रथम चण्डेश-अनुग्रह मूर्ति चोलपुरम् मन्दिरमें है। इस मूर्तिका दूसरा मौलिक नमूना कॉंजीवरम्के कैलासनाथ मन्दिरमें है,

भगवती उमाने इसपर वात्सल्य प्रकट किया है।

विष्णु कच्छपके रूपमें उस शक्तिका पता लगानेमें असफल रहे। यही मूर्ति भारतके शिल्पमें लिंगोद्भवमूर्ति कहलाती है। इसके अलावा चन्द्रशेखर मूर्ति, पशुपित मूर्ति, सुखासन मूर्ति आदि बनायी गयी है। सुखासन मूर्तिमें शिव उमासहित

दिखाये गये हैं। एलीफेण्टा एवं एलोराके देवालयोंमें इस

मूर्तिका दर्शन सुन्दरतासे हुआ है। इसके अलावा अनेक

होनेके विधायकत्वको बताया गया है। उसीमें एक स्तम्भके

माध्यमसे शिवकी प्रतिष्ठा बतायी गयी है। ब्रह्मा हंस एवं

लिंगोद्भव मूर्तिमें ब्रह्मा एवं विष्णुके सृष्टिनिर्माणकर्ता

लिंगोद्भव मूर्तियाँ मिलती हैं।

भाग ८९

आसनमें बैठे हैं। इसके बाद स्कन्द मूर्तिका स्थान है।

आवरणचित्र-परिचय संख्या ३] इसका निदर्शन एलोरा-एलीफेण्टा स्थानोंमें प्राप्त होता है। मृर्तियाँ, रत्नज मृर्तियाँ, शैलज मृर्तियाँ एवं क्षणिक मूर्तियोंको रखा गया है। दार्शनिक मृर्तियोंके अन्तर्गत इसमें पंचमहेश मृर्ति एवं अष्टमूर्तियाँ विशिष्ट मानी गयी हैं। स्थापत्य एवं लिंगोद्भव मूर्तियोंका उदाहरण भीटागाँवमें प्राप्त मूर्तिकलाके दिग्दर्शनमें एलीफेण्टामें इसका दृश्य अद्भुत होता है। खजुराहोके मातंगेश्वर मन्दिरमें भी इसका है। अष्ट प्रतिमा तंजौरमें भी है। एलीफेण्टा गुफामें अच्छा उदाहरण देखा जा सकता है। त्रिमुख महेश मूर्ति है, इसे त्रिदेव भी कहते हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष शिवमय है, शिव आदि-अनादि अशान्त एवं उग्र मूर्तियोंके अन्तर्गत कामान्तक मूर्ति देवता हैं। स्थान-स्थानपर वे शिवलिंगके रूपमें प्रकट एवं संहारमूर्तियाँ आती हैं। इनमें कामका तीसरे नेत्रके होकर भक्तोंका कल्याण करते हैं। एक स्थलमें उनकी दृष्टिपातसे भस्म होना प्रदर्शित किया गया है। नाममयी स्तुति इस प्रकार की गयी है-संहारमृर्तियोंमें शिवको भक्तों एवं देवताओंके शत्रुओंका शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्। संहार करते हुए दिखाया गया है। वे उग्र एवं विनाशकारी रूपमें काशीपते करुणया जगदेतदेक स्त्वं हंसि पासि विद्धासि महेश्वरोऽसि।। दिखाये गये हैं। व्याघ्रचर्म तथा सर्पींसे लिपटे दिखाये गये हैं। त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे त्वय्येव तिष्ठति जगन्मुड विश्वनाथ। इनमें शिवके साथ पार्वतीको नहीं दिखाया गया है। एक त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश लिंगात्मकं हर चराचरविश्वरूपिन्।। मूर्तिमें गजासुरका संहार करते हुए शिवको दिखाया गया है। हे शम्भो! हे महेश! हे करुणामय! हे शूलपाणे! हे कालारि मूर्ति एवं त्रिपुरान्तक मूर्ति भी इसी कोटिमें आती है। गौरीपते! हे पशुपते! हे पशुपाशनाशिन्! हे काशीपते! आप भैरव मूर्तियोंके अन्तर्गत सामान्य भैरव, बट्क भैरव, ही अपनी अपार करुणासे इस जगतुकी सुष्टि करते हैं, स्वर्णाकर्षण भैरव एवं चतुष्पटिक भैरवकी मूर्तियाँ हैं। इसका पालन करते हैं और इसका संहार करते हैं। आप वीरभद्र मूर्ति, जालन्थरवध मूर्ति एवं अघोर मूर्ति भी प्रसिद्ध देवोंके भी देव महादेव हैं। हे देव! हे भव! आपसे ही है। अघोर मूर्तिका सम्बन्ध अघोर एवं वामाचारसे है। जगतुकी उत्पत्ति होती है। हे स्मरारे! आपमें ही जगतुकी लिंगमूर्तियोंके अन्तर्गत चल एवं अचल मूर्तियाँ प्रतिष्ठा (स्थिति) है और हे मृड! हे विश्वनाथ! यह जगत् अन्तमें आपमें ही लीन भी हो जाता है। हे ईश! हे हर! हे आती हैं-मृण्मय मूर्तियाँ, लौहज मूर्तियाँ, रजत मूर्तियाँ, स्वर्ण चराचरविश्वरूपिन्! आप लिंगात्मकको नमस्कार है।

आवरणचित्र-परिचय

चैत्र, आषाढ्, आश्विन और माघकी शुक्ल प्रतिपदासे नवमीतकके नौ दिन नवरात्र कहलाते हैं, परंतु प्रसिद्धिमें चैत्र और आश्विनके नवरात्र मुख्य माने जाते हैं। चैत्रमें नवरात्र-पर्यन्त आद्याशक्ति भगवती दुर्गा तथा भगवान् श्रीरामकी विशेष

आराधना की जाती है, जिससे वातावरण परम सात्त्विक एवं शक्तिमय हो जाता है। भक्तजन यथासामर्थ्य व्रत-उपवास

करनेके साथ कहीं भगवतीका दर्शन, पूजा, स्तृति, भजन करते हैं तो कहीं श्रीदुर्गासप्तशती, श्रीदेवीभागवत तथा श्रीरामचरितमानसप्रभृति प्रासादिक ग्रन्थोंका पाठ करके लाभ प्राप्त करते हैं। इस वर्ष चैत्र नवरात्र, जिसे वासन्ती नवरात्र भी

कहते हैं दि० २१ से २८ मार्च तक है। भक्तजनोंको इस पावन अवसरका यथासम्भव लाभ प्राप्त करना चाहिये।

आवरणचित्रमें महिषासुरका वध करती भगवती दुर्गाकी छविका चित्रण है, जिनकी कथा श्रीदुर्गासप्तशतीके तृतीय अध्यायमें

वर्णित है। महिषासुरके वधके अनन्तर देवता भगवती दुर्गाकी स्तुति करते हैं, उस स्तुतिका एक श्लोक इस प्रकार है— दुर्गे स्मृता हरिस भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।

दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥

माँ दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें

परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दु:ख, दिरद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है,

जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयाई रहता हो।

िभाग ८९ कहानी— सेवा (श्री 'चक्र') 'सेनापति! कभी तुम भी राजपूत थे, तुममें भी चढ़ाई की और उन्हें बन्दी कर लिया। बेचारी नववधू और राजपूती रक्त है; तुम समझ सकते हो कि कोई राजपूत कर भी क्या सकती थी, उसने सेनापतिको पत्र लिखा। इस प्रकारका अपमान कैसे सह सकता है। उन्होंने जो (२) भी किया, अपनी मर्यादाके लिये। उनकी रक्षा तुम्हारे राजपूत रमणी पतिके साथ सती न हो सकी। हाथों है, तुम भूले नहीं होगे कि मैं सम्बन्धमें तुम्हारी कुलगुरुने पता नहीं क्यों उसे ऐसा करनेसे रोक दिया। बहन होती हूँ। अभी परसों मेरी शादी हुई है, आज ही वह राजभवनसे रात्रिमें एकाकी ही निकली और कहीं चली गयी। फिर किसीको रामसिंहकी विधवा पत्नीका मुझे विधवा मत बनाओ। तुम मेरे भाई हो, अत: इतना भी कहते बना। तुम्हारी बहन ' पता नहीं चला। उसे किसीने कभी नहीं देखा। सेनापित बहरामखाँने पत्रको कई बार पढा। कुछ स्वयं बहरामखाँको बादशाहके विरुद्ध संयोगवश देरतक वे सोचते रहे। 'ऐसा नहीं हो सकता। मुझे स्वामीकी विद्रोह करना पडा। बहरामखाँने जब विद्रोह किया तो आज्ञाका पालन तो करना ही होगा।' पत्रवाहकको कहला वह दिल्लीसे बाहर था। बादशाहकी विशाल सेना दिया 'विचार करूँगा'। स्वयं शिविरसे बाहर टहलने लगे। युवराजके सेनापतित्वमें विद्रोही सेनापतिका दमन करने भेजी गयी। भयंकर संग्राम आरम्भ हो गया। सरदार रामसिंहको प्राणदण्डकी आज्ञा मिल चुकी थी। सेनापित चाहते तो अपने आग्रहसे उनकी रक्षा कर नित्य सन्ध्याको संग्रामभूमिमें कुछ सफेद नकाब-पोश आते और घायल सैनिकोंको उठा ले जाते। जब सकते थे, किंतु उन्होंने उपेक्षा की। शृंखलाओंसे जकडे हुए उस राजपूत सिंहका विधकोंने सिर उतार लिया। वे सैनिक अच्छे होकर लौटते थे तो बतलाते कि 'पास बागी सरदारका मस्तक देखकर बादशाह प्रसन्न हुआ। ही किसी वनमें कुछ सुन्दर शिविर हैं। वहाँ रोगियोंके पिछले दिनों विवाहके लिये बादशाहसे छुट्टी लेकर उपचारकी सब सामग्री प्रस्तुत रहती है। कुछ नकाब-रामसिंह सेनासे पृथक् हुए थे। संयोगवश उन्हें लौटनेमें पोश रोगियोंकी बड़े प्रेमसे शुश्रुषा करते हैं। कोई भी देर हुई। वे दरबारमें गये, बादशाहने एक दिनकी देरीपर वहाँका सेवक कभी मुख नहीं खोलता। वहाँकी स्वामिनी युद्धकी देवी कही जाती हैं। वे एक बार आती हैं और कोई ध्यान नहीं दिया। पर घटनाक्रम यहीं समाप्त नहीं सबको देख जाती हैं। बहुत पूछनेपर भी उनके विषयमें हुआ। अपने पदपर काम करनेके लिये जब वे उपसेनापतिके पास पहुँचे तो उसने इन्हें गालियाँ दीं। राजपूत वीर कोई कुछ न जान सका। उन्हें खुले मुख किसीने कभी अपमान नहीं सह सकता। उन्होंने तलवार निकाली और नहीं देखा है।' उपसेनापतिको काटकर दो कर दिया। पता लगानेपर भी उस वनका पता नहीं लगा। अपराध तो इतना ही था। फिर तो आत्मरक्षाके आँखोंपर पट्टी बाँधकर वहाँके सेवक घायलोंको ले जाते और अच्छे हुए सैनिकोंको छोड़ जाते थे। वहाँसे लिये जो दो, चार, दस सैनिक झपटे, उनका भी वध करना पड़ा। रामसिंह वहाँसे सीधे अपने निवासस्थानपर सैनिकोंको एक ही शिक्षा मिलती थी—'शत्रुका भी सम्मान करो और उसकी परिस्थितिको समझकर तब चले आये। यदि वे उस समय भी सेनापतिके समीप चले उसपर क्रोध करो।' 'युद्धकी देवी' यह नाम बडी जाते तो सम्भवतः इतना भयंकर परिणाम न होता। श्रद्धाकी वस्तु हो गया था। कोई भी देवीके आदिमयोंको बादशाहको समाचार मिला। उसने सोचा 'रामसिंह रोकने या उनके कार्यमें बाधा देनेका साहस नहीं कर विद्रोही हो गया है।' सेनापितको उसका मस्तक लानेकी

असिंn हुं एं। इक्क रीमिखनि प्रेनि एं स्कर् https://dsc. qq/dhattpan | vMADF स्पिन् परिस् दिन रामिश्रांत व्यक्ति । vMADF

संख्या ३] से	वा ३९
*****************************	**************************************
सहसा एक दिन भयंकर युद्ध होने लगा। युवराज	बनाना और सेनापति पक्षपाती थे बड़े युवराजके। बादशाह
स्वयं युद्ध संचालन कर रहे थे। बहरामखाँ घायल होकर	युवराजको चाहते हुए भी राज्ञीके परवश थे। भावी
हाथीसे नीचे गिरा। निकट ही था कि शाही सैनिक उसे	शाहजहाँ इस प्रकार गद्दीसे वंचित किया जानेवाला था?
मार डालते, पर इसी समय एक श्वेत घोड़ा दौड़ता हुआ	एक षड्यन्त्र नूरजहाँने रचा। सोते हुए सेनापतिका
आया। श्वेत नकाबपोशको देखकर सैनिक ठिठकसे गये।	वध करनेके लिये एक सेनापतिका विश्वस्त सेवक प्रस्तुत
नकाबपोशने कहा 'बस, लड़ाई बन्द करो। मैं हूँ युद्धकी	हो गया। उसे विश्वास दिलाया गया था कि वह सेनापति
देवी।' युवराज नहीं चाहते थे कि सेनापति इस प्रकार	बना दिया जायगा। लोभके वश मनुष्य क्या-क्या पाप
हाथसे निकल जाय, लेकिन देवीको रोकनेका उनमें साहस	नहीं करता?
भी नहीं था। कोई सैनिक भी साथ न देता, विवश थे।	सेनापति अपने शयनागारमें शयन कर रहे थे।
(\$)	रात्रिके प्रथम प्रहरमें द्वारपालने देखा कि एक नकाबपोश
बहरामखाँ बार-बार सोचता 'मैं कहाँ हूँ ? ये लोग	सम्मुख खड़ा है।'कौन?''युद्धकी देवी, मार्ग छोड़ दो।'
कौन हैं ? युद्धमेंसे मेरे प्राण बचानेवाली वह देवी कौन	द्वारपालने तनिक हिचिकचाहटके साथ मार्ग छोड़ दिया।
है ? वह कहाँ रहती है ?' सेनापित देखते कि देवी दिनमें	सेनापति नींदसे जगाये जानेके कारण चौंक पड़े।
कई बार आकर वहाँके सेवकोंसे कुछ पूछ जाती है। जब	उन्होंने पूछा—'आप कौन हैं ?''युद्धकी देवी।' झटपट
भी सेनापतिने कुछ पूछा, उन्हें प्रत्येकसे उत्तर मिला 'हम	पलंगसे उतरकर सेनापति घुटने टेककर नीचे बैठ गये
सेवक हैं, सेवा करना ही हमारा कार्य है। अच्छा हो	और बोले 'मेरे लिये कुछ आज्ञा है ?' 'हाँ, तुम अपने
यदि आप भी शत्रुकी परिस्थिति समझा करें और	वस्त्र यहीं छोड़कर ऊपरके कमरेमें जाकर सो जाओ।
यथासम्भव पीड़ितोंकी सेवा किया करें।'	रात्रिमें इस कमरेकी ओर मत आना।' आज्ञाका पालन हुआ।
कई दिनोंमें जाकर जड़ी–बूटियोंके उपचारसे सेनापति	(५)
अच्छे हो सके। उन्हें वहाँसे नेत्र बन्द करके एक पुरुष	सेनापितको देवीकी बातसे बड़ा कुतूहल हो रहा
घोड़ेपर कहीं छोड़ आया। उन्होंने अपनेको उस स्थानसे	था। वे प्रातः सर्वप्रथम अपने शयनागारमें पहुँचे। दूरसे
दूर पाया।	वहाँका दृश्य देखते ही स्तम्भित-से हो गये। पलंगपर
युवराजने सेनापतिकी सेनाको बन्दी कर लिया था।	मुख ढके, उनके उसी रात्रिको छोड़े वस्त्रोंमें कोई सो
वे सेनापतिकी प्रतीक्षामें थे। बहरामखाँ भी इस परिस्थितिको	रहा है। रात्रिमें किसीने उसका खून कर दिया। रक्तसे
जानते थे। वे अवसरसे लाभ उठाकर बंगालकी ओर	वस्त्र एवं भूमि लथपथ है। निकट जाकर देखनेसे पता
चले गये। कुछ दिन प्रतीक्षा करके युवराज भी दिल्ली	लगा, वह कोई स्त्री है।
लौट आये।	सेनापतिने ध्यानसे देखा। एक बन्द लिफाफा
सेनापतिने मार्गमें सेना एकत्र करके बंगालके	मिला। खोलकर उसमेंसे पत्र निकालकर पढ़ने लगे।
विद्रोही नवाबको पराजित किया। उससे कर लेकर	'सेनापित! राज्ञीने तुम्हारे वधका षड्यन्त्र रचा था। मैं
दिल्ली भेज दिया। बादशाह इस बातसे बहुत प्रसन्न	तुमसे बता सकती थी, पर मुझे उस वधकर्ताके प्राण भी
हुआ। उसने सेनापतिको क्षमा कर दिया। सेनापति	बचाने थे। प्रतिशोध मत लेना या लेना ही हो तो मुझसे
दिल्ली आकर पूर्ववत् अपने पदपर कार्य करने लगे।	सीख लो। तुमने मेरे पतिको प्राणदान नहीं दिया था। मुझे
(8)	विधवा बना दिया था। यह उसका प्रतिशोध है। सेवा
एक बहरामखाँ ही बेगमके मार्गमें बाधक थे।	ही सच्चा प्रतिशोध है। मैंने अपने भाईकी सेवा की है।
बेगम चाहती थी अपने पुत्र खुसरोको सिंहासनासीन	यह मेरा कर्तव्य था। तुम्हारी बहनः…'

करायी गयी। बहरामखाँका मन फिर सेनाके कार्यमें नहीं पत्र हाथसे छूटकर गिर पड़ा। सेनापति उस महिलाके चरणोंपर मस्तक रखकर फूट-फूटकर रोने लगा। वह राज्ञीको हृदयसे क्षमा भी न कर सका। फिर लगे। उन्हें पश्चात्ताप हो रहा था, आत्मग्लानि हो रही विद्रोही होकर भागा और मक्केकी यात्रा करने चला गया। थी। परिस्थिति भी विकट थी। वे जैसे-के-तैसे उठे और दिल्लीके किलेके पास नूरजहाँ बेगमकी बनवायी एक पत्र लिखकर राज्ञीके पास भिजवा दिया। दूतने जाकर पत्र पहुँचवाया। उसमें लिखा था-हुई वह समाधि अब भी है। परिस्थितिवश वह एक 'षड्यन्त्र विफल रहा। पर अच्छा होता यदि वह सफल कोनेमें पड़ गयी है। पर अब भी कुछ जाननेवाली वृद्धाएँ हो गया होता। इस नीचकी रक्षाके लिये एक स्वर्गकी उसे सतीका चबूतरा कहती हैं। वहाँ हिन्दू, मुसलमानका देवी बलिदान हो गयी। मैं अब बाधा नहीं दूँगा; मुझे कोई भेद नहीं है। सब उसे प्रणाम करते हैं। स्त्रियाँ कभी

गुप्तद्वारसे रक्षकोंके साथ सेनापितके यहाँ पधारीं। उन्होंने उस देवीके शवको देखा, वह पत्र देखा और देखा पागल हुए बहरामको। रोती हुई बेगमने बहरामसे क्षमा माँगी। उस देवीके शवका ब्राह्मणोंसे संस्कार कराकर अन्त्येष्टि

आज्ञा मिले, मैं हजको आज ही जाना चाहता हूँ।'

महिलाका कोमल हृदय दहल उठा। राज्ञी चुपचाप

साधनोपयोगी पत्र

भगवान् नित्य साथ रहते हैं

सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपके पत्र प्राप्त हो गये। बड़ा सुन्दर भाव है। भगवान्की आपपर बड़ी कृपा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। हमको भगवान् इन आँखोंसे चाहे न दिखायी दें, पर

इसमें कोई सन्देह नहीं। हमको भगवान् इन आँखोंसे चाहे न दिखायी दें, पर यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि हमारे पास वे सदा– सर्वदा रहते हैं, कभी भी हमको छोड़कर अलग नहीं होते।

सर्वदा रहते हैं, कभी भी हमको छोड़कर अलग नहीं होते। पर हमारा पूरा निश्चय न होनेसे हम उन्हें भूले हुए हैं, इसीसे अशान्ति अनुभव करते हैं। हीरोंका हार अपने गलेमें

ही है। वह कपड़ोंमें ढका है। इस बातको भूल जानेसे मनुष्य उसे बाहर ढूँढ़ता है और न मिलनेपर दुखी होता है। जब याद आ गया, कपड़ा हटाकर देख लिया कि हार

जब याद आ गया, कपड़ा हटाकर दखालया कि हार मिल गया। इसी प्रकार भगवान् सदा-सर्वदा हमारे साथ हैं। हृदयमें विराजमान हैं। (केवल निर्गुण-निराकार रूपसे ही नहीं हमारे जाने-माने हुए दिव्य सगुण-साकार रूपमें

। होगी तब दीखने भी लगेंगे। यह उनकी इच्छापर छोड़ है, दीजिये। वे सदा साथ रहते हैं, यही क्या उनकी कम कृपा

है। उनकी यदि स्वप्नमें भी झाँकी होती है तो यह हमारा बड़ा सौभाग्य है। यह उनकी महती कृपा है।

रख आती हैं।

बड़ा सौभाग्य है। यह उनकी महती कृपा है। कदाचित् ऐसी बात न जँचे, यद्यपि है तो यह परम सत्य ही, तो उनके न मिलनेसे उनके वियोगमें—विरहमें

जो उनका पल-पलमें स्मरण होता है, यह क्या कम सौभाग्य है? इसमें क्या उनकी कम कृपा है? वे नहीं चाहते तो न मिलें, न दर्शन दें, बड़े-से-बड़ा दु:ख दें,

पर वह दु:ख यदि नित्य उनका मधुर-मधुर स्मरण कराता हो तो क्या हमारी यह चाह नहीं होनी चाहिये कि उनके इस मधुर-मधुर स्मरण सुखका महान् आनन्द,

फूल-बताशे भी चढ़ा आती हैं। कोई कभी दीपक भी

करानेसे उनके रोग नष्ट हो जाते हैं। कुछ लोग उसे पीरकी

कब्र भी कहते हैं। सम्भवतः उसे मुसलमानोंके द्वारा

सम्मानित देखकर लोगोंकी ऐसी भावना हो गयी होगी।

कहते हैं कि वहाँपर छोटे बच्चोंको ले जाकर प्रणाम

भाग ८९

कि उनके इस मधुर-मधुर स्मरण सुखका महान् आनन्द, महान् सौभाग्य हमें प्रतिक्षण मिलता रहे; फिर वह चाहे वियोगजनित दु:खसे ही मिलता हो। वह दु:ख वस्तुत:

ही नहीं हमारे जाने-माने हुए दिव्य संगुण-साकार रूपमें वियोगजनित दु:खसे ही मिलता हो। वह दु:ख वस्तुत: भी।) विश्वास कीजिये—'वे सदा साथ रहते हैं।'इसके परमानन्दस्वरूप है, जो नित्य-निरन्तर प्राण-प्रियतम बाद निश्चय होगा कि 'रहते ही हैं' अतएव उनकी इच्छा प्रभुकी स्मृति कराता है।

संख्या ३] साधनोपय] साधनोपयोगी पत्र ४१		
********************	*******************************		
मनमें निश्चय कर लेना चाहिये कि 'भगवान् मेरे	जगह, हर अवस्थामें प्राणधन प्रभुकी स्मृति और उनकी		
हैं और मैं भगवान्का हूँ।' जबतक शरीरमें 'अहंता' और	उन्मादकारिणी पावन झाँकी होती रहती है। नित्य-		
शरीर-सम्बन्धी प्राणि-पदार्थोंमें 'ममता' रहती है, तबतक	निरन्तर प्रतिक्षण उनकी सेवाका सुअवसर-सौभाग्य मिलता		
साधना आगे बढ़ती नहीं। दिन-रात प्राणि-पदार्थोंमें	रहता है। कोई काम ऐसा होता ही नहीं, जिसमें उनकी		
राग-द्वेष बना रहता है। इसलिये या तो शरीर एवं	सेवा न बनती हो। हम सोते हैं और उनकी सेवा होती		
संसारको असत् समझकर अहंता और ममता मिटा दी	है; हम खाते हैं और उनका भोग लगता है; क्योंकि		
जाय अथवा बहुत ही सरल, सरस दूसरी चीज यह है	प्रभुकी सेवाको छोड़कर फिर अलग अपना कोई काम		
कि 'अहंता' (मैं)-को भगवान्का दास बना दिया	रह ही नहीं जाता। इसीसे भगवान् कहते हैं कि 'वह		
जाय—अर्थात् मैं न तो शरीर हूँ, न और कुछ हूँ न और	मेरा ही काम करता है'—(श्रीमद्भगवद्गीता ११।५५)।		
किसीका हूँ। मैं एकमात्र उन्हींका दास हूँ और 'सारी	इसलिये सेवाप्राण, सेवापरायण, सेवाजीवन भगवान्के		
ममता-सारे मेरेपनको भगवान्में लगा दिया जाय।'	सेवक उनकी सेवाको छोड़कर दिये जानेपर भी मुक्ति		
अर्थात् कोई भी प्राणि–पदार्थ मेरा नहीं। एकमात्र	स्वीकार नहीं करते—		
भगवान् ही मेरे हैं। भगवान्के चरण-कमल ही मेरे हैं।	'दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।'		
'मैं उनका और वे ही मेरे'—तब फिर अपने-आप ही	(श्रीमद्भा० ३।२६।१३)		
सारी अशान्ति, सारे दु:ख–दोष दूर हो जायँगे। उनका	कौन विषयी है, कौन साधक—यह सब कुछ मत		
अनन्त सुखमय स्मरण आपका जीवन बन जायगा। इसमें	देखिये। दूसरोंमें दोष देखनेसे अपनेमें गुणका अभिमान		
भी पहले विश्वास करना होगा कि 'मैं उनका ही हूँ और	जाग्रत् होता है, जो भगवान्की ओरसे वृत्तिको हटाकर		
वे ही मेरे हैं।' इसके बाद निश्चय होगा कि 'अवश्य	सब लोगोंमें दोष-दर्शनमें ही लगा देता है और इससे		
ही हैं'; फिर अनुभूति होगी और यह अनुभव हो जायगा	चित्तमें एक नयी ज्वाला और नयी अशान्ति उत्पन्न हो		
कि 'मैं उनका ही हूँ और वे ही मेरे हैं।' एक भक्तने	जाती है। 'सब भगवान्के हैं'—यही समझिये। भगवान्के		
बड़ा सुन्दर अपना परिचय दिया है—	अनुग्रहका आश्रय रखिये। उनकी कृपासे सारे विघ्न टल		
नाहं विप्रो न च नरपतिर्नेव वैश्यो न शूद्रो	जायँगे, अवश्य ही टल जायँगे—'सर्वदुर्गाणि		
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।	मत्प्रसादात्तरिष्यसि। ' (गीता १८।५८) भगवान्का		
किंतु प्रोद्यन्निखलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-	प्रसाद आपको बड़े-बड़े विघ्नोंके सरदारोंका सिर कुचलकर		
र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासिदासानुदासः॥	आगे बढ़ा ले जायगा। ब्रह्माजीने कहा है—		
'मैं न तो ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूँ, न	'त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया		
शूद्र हूँ। न ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ हूँ, न वानप्रस्थी हूँ	विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो।'		
और न संन्यासी हूँ; किंतु अखिल परमानन्द-परिपूर्ण	ः		
अमृतसागर-स्वरूप श्रीगोपीपति श्रीकृष्णके चरण-कमलके	'प्रभो! आपके द्वारा सुरक्षित होकर वे बड़े-बड़े		
दासके दासका अनुदास हूँ।' इस प्रकार जब भगवान् 'मैं	विघ्न डालनेवाली सेनाके सरदारोंके सिरपर पैर रखकर		
और मेरे' बन जाते हैं, तब न तो कोई जगत्से सम्बन्ध	निर्भय विचरते हैं।'		
रह जाता है और न जगत्से कोई आशा ही रह जाती	यह सत्य है कि वातावरणका अच्छा–बुरा असर		
है। फिर यदि जगत्का सम्बन्ध रहता है तो वह प्रभुके	मनपर पड़ता है और यह भी सत्य है कि मनके		
मधुर सम्बन्धको लेकर ही रहता है; किसी ममता-	विकारोंको, दुर्बलताओंको तथा दोषोंको दूर करने एवं		
आसक्ति, आशा–आकांक्षाको लेकर नहीं। हर समय, हर	भगवान्के प्रति दृढ़ विश्वास-आस्था उत्पन्न करनेके		

भाग ८९ लिये सत्संगकी आवश्यकता है। अतएव सत्संगकी चाहते हैं, यह क्या उनकी प्रत्यक्ष कृपा नहीं है? इस युगमें कितने आदमी ऐसे हैं, जिनके ऐसे भाव हैं? इच्छा तथा सत्संगकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न भी करना चाहिये, परंतु इतनेपर भी यदि बाहरी सत्संग न मिले, तो अतएव आप विश्वास कीजिये; फिर अनुभूति भी हो सत्संगके लिये व्याकुल रहते हुए भी, इसे भी भगवानुका जायगी। मंगल-विधान मानना चाहिये। वे प्रभु तो कभी अलग पर यदि सांसारिक विघ्नोंका अवसान न हो, होते ही नहीं। वे स्वयं ही ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देंगे, विघ्न-पर-विघ्न आते रहें तो उसमें भी प्रभुकी मंगलमयी जिससे सत्संगसे बढकर लाभ उस विपरीत वातावरणमें कुपाका ही दर्शन करते रहिये। यह समझिये कि 'मेरी ही हो जायगा। वे चाहेंगे तो सत्संगका सुअवसर बना सारी संसारासक्तिका नाश करनेके लिये ही प्रभुकी महती देंगे। किसी संतको भेज देंगे या स्वयं ही प्रकट होकर कृपा विघ्नमयी भीषण मूर्ति धरकर पधारी है। प्रभु अब मेरी सारी आशा-आसक्ति और कामना-वासनाका शीघ्र अथवा अप्रकट रूपसे समस्त विकारों, दुर्बलताओं तथा दोषोंको हराकर उसे भलीभाँति अपना लेंगे। जरा भी ही नाश करना चाहते हैं। अत: अब तो और भी जोरसे निराश न होकर सदा-सर्वदा भगवानुकी कृपापर विश्वास लगकर उनका स्मरण करूँ।' मतलब यह है कि उनके रखना चाहिये और सर्वत्र, सदा उनकी कृपाको देखते मंगल-विधानमें सर्वथा विश्वास कीजिये और उनकी रहना चाहिये। भेजी हुई प्रत्येक परिस्थितिसे लाभ उठाइये। यह परम सत्य है कि वे प्रत्येक परिस्थिति हमारे भगवानुकी कृपाका अटल अंडिग विश्वास बना रहे, ऐसी आपकी चाह बहुत उत्तम है। भगवान् हमारी लाभके लिये ही भेजा करते हैं। हाँ, परिस्थिति वैसे ही अलग-अलग होती हैं, जैसे निपुण वैद्यका विभिन्न प्रत्येक चाहको जानते हैं। विश्वास रखिये, वे सच्ची चाहको पूरा भी करते हैं। प्रकारसे रोगियोंके लिये विभिन्न प्रकारकी चिकित्साओंका भगवानुका तो स्वभाव ही दीन-हितकारी है। वे चुनाव और प्रयोग। हो सकता है कोई औषधि मीठी हो, सदा ही दीन, हीन, मिलन, पामर जनोंपर सहज प्रीति भरपेट भोजन मिलता हो और आराम कराया जाता हो करते आये हैं— एवं कोई औषधि अत्यन्त कडुई हो; कहीं अंगच्छेदन भी हो और कहीं लम्बे उपवासकी ही व्यवस्था हो; पर दोनों 'विरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति।' आप क्यों मानते हैं कि आपपर भगवान्की अनन्त ही स्थितियोंमें विधान होता है रोगनाशके लिये ही। इसी और असीम कृपा नहीं है। आपको निश्चय मान लेना प्रकार भगवान्के प्रत्येक मंगलमय विधानको मंगलमय चाहिये कि आपपर भगवान्की अत्यन्त और असीम समझकर सादर ग्रहण कीजिये और हर परिस्थितिमें कृपा है। वह कृपा आपको दिखती नहीं, इससे क्या कृतज्ञतापूर्वक उनका स्मरण करते रहिये। समर्पण तो वे हुआ? भूख-प्यास आँखसे दिखती है क्या? मनके अपनी चीजका आप ही करा लेंगे, हमारी ओरसे हर्ष-विषाद आँखसे दिखते हैं क्या? पर जरा गहराईसे समर्पणकी तैयारी रहनी चाहिये। विचार कीजिये, यदि आपके मनमें अडिग और अटल यह कभी मत समझिये कि उनके घर, उनके कृपापर विश्वासकी चाह होती है, आप निरन्तर उनका हृदयमें हमारे लिये जगह नहीं है। हमको तो वे अपने मधुर स्मरण करना चाहते हैं, आप सदा-सर्वदा प्रभुको हृदयमें ही रखते हैं और वे सदा हमारे हृदयमें ही रहते अपने हृदयमें बसाना और स्वयं उनके हृदयमें बसना हैं; पर सहसा प्रत्यक्ष नहीं होते। इसमें भी उनका चाहते हैं, आपको उनकी चर्चासे रहित बातें अच्छी नहीं मंगलमय रहस्य ही है। अतएव सदा सब प्रकारसे लगतीं, आपको उनकी मधुर लीलाकी चर्चाके बिना चैन उल्लसित और प्रफुल्लित हृदयसे उनका मंगल-स्मरण व्रतोत्सव-पर्व

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२	, शक	१९३७, सन्	२०१५, सूर्य	उत्तरायण, व	त्रसन्त-ऋतु,	वैशाख कृष्णपक्ष
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल	न, भद्रा, पंचव	ह तथा व्रत-पर्वादि

था व्रत-पर्वादि चित्रा रात्रिमें १२।५० बजेतक ५ अप्रैल तुलाराशि दिनमें ११। ४८ बजेसे। प्रतिपदा सायं ६।१६ बजेतक रवि द्वितीया रात्रिमें ७ । २४ बजेतक | सोम | स्वाती 🕠 २ । २७ बजेतक भद्रा दिनमें ७। ४६ बजेसे रात्रिमें ८। ७ बजेतक, वृश्चिकराशि 9 ,,

6 11

9 ,,

,,

,,

दिनांक

१९ अप्रैल

२० ,,

२१

२२

२३

२४ "

२५

२६ "

२७ ,,

२८

२९

,,

८।५० बजे।

मुल रात्रिशेष ४। १५ बजेसे।

भद्रा प्रातः ६। २६ बजेतक।

भद्रा रात्रिमें १। ९ बजेसे।

दिनमें १२। १४ बजेसे।

मुल दिनमें ३। ४६ बजेतक।

श्रीपरशुराम-जयन्ती, अक्षयतृतीया।

आद्यजगद्गुरु शंकराचार्य-जयन्ती।

श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती।

एकादशीव्रत (सबका)।

२। २ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीवत।

प्रदोषव्रत।

धनुराशि रात्रिशेष ४। २५ बजेसे।

तृतीया 🦶 ८। ७) बजेतक 🛮 मंगल 🗗 विशाखा 🕶 ३। ३७ बजेतक

संख्या ३]

अनुराधा रात्रिशेष ४।१५ बजेतक

चतुर्थी 🕖 ८। १७ बजेतक बुध

पंचमी 🔑 ७। ५५ बजेतक ज्येष्ठा 😗 ४। २५ बजेतक गुरु षष्ठी 🦙 ७।५ बजेतक

मूल रात्रिमें ४। ६ बजेतक शुक्र सप्तमी सायं ५।४८ बजेतक

शनि पु० षा० ११ ३। २२ बजेतक रवि

१० ११ " उ० षा० 🗤 २।१९ बजेतक

१२ श्रवण १११० बजेतक

१३ "

सोम मंगल धनिष्ठा ११ ११ । २९ बजेतक

१४ " शतभिषा ११ ९।५० बजेतक

१५ ,, पू०भा० 😗 ८।१० बजेतक १६ "

एकादशी 🗥 ९ । ४१ बजेतक 🛮 बुध

द्वादशी प्रातः ७।१५ बजेतक । गुरु त्रयोदशी रात्रिशेष ४।५० बजेतक चतुर्दशी रात्रिमें २।२९ बजेतक | शुक्र | उ० भा० सायं ६।३२ बजेतक |१७ 🕠

अमावस्या 🗤 १२ । १७ बजेतक 🛮 शनि 🗎 रेवती 🗤 ५।३ बजेतक सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

तिथि वार नक्षत्र

प्रतिपदा रात्रिमें १०।२० बजेतक रिव अश्विनी दिनमें ३।४६ बजेतक भरणी '' २।४८ बजेतक

द्वितीया '' ८।४२ बजेतक सोम तृतीया ११७। २६ बजेतक मंगल कृत्तिका "? २। ९ बजेतक चतुर्थी सायं ६। ३६ बजेतक बुध रोहिणी 😗 १।५५ बजेतक

मृगशिरा '' २।१० बजेतक

पंचमी 😗 ६। १५ बजेतक गुरु आर्द्रा 🕠 २।५५ बजेतक

पुनर्वस् '' ४। ११ बजेतक

षष्ठी 😗 ६।२४ बजेतक|शुक्र सप्तमी रात्रिमें ७।८ बजेतक शनि पुष्य सायं ५।५४ बजेतक अष्टमी '' ८। १६ बजेतक रिव आश्लेषा रात्रिमें ८।२ बजेतक

सोम

नवमी '' ९। ५२ बजेतक

दशमी 😗 ११। ४४ बजेतक मंगल

अष्टमी दिनमें ४। १० बजेतक

नवमी 🦙 २।१४ बजेतक

दशमी 🦙 १२। २ बजेतक

त्रयोदशी अहोरात्र

एकादशी 🕶 १। ४६ बजेतक बिध द्वादशी 😗 ३।४९ बजेतक | गुरु त्रयोदशी प्रातः ५।४१ बजेतक शिनि

चतुर्दशी दिनमें ७। १४ बजेतक रिव

शक्र

पूर्णिमा ''८। २० बजेतक सोम

हस्त अहोरात्र स्वाती ''९।५७ बजेतक

उ० फा० 🗤 ३। ४१ बजेतक हस्त प्रात: ६।७ बजेतक चित्रा दिनमें ८।१५ बजेतक

पू० फा० ग १। ४ बजेतक

¹¹ १०। २८ बजेतक

30 ,, १ मई 2 " ३ " 8 "

प्रदोषव्रत।

तुलाराशि रात्रिमें ७। ११ बजेसे, श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत। **भद्रा** दिनमें ७। १४ बजेसे रात्रिमें ७। ४८ बजेतक, **व्रतपूर्णिमा।** वृश्चिकराशि रात्रिमें ४। ५५ बजेसे, पूर्णिमा, बुद्धपूर्णिमा।

कन्याराशि दिनमें ७। ४३ बजेसे।

रात्रिमें ९। १९ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें

भद्रा दिनमें १२। २ बजेतक, **कुम्भराशि** दिनमें १२। १४ बजेसे,

मेष-संक्रान्ति दिनमें ३। २५ बजे, खरमास समाप्त, पंचकारम्भ

भद्रा रात्रिशेष ४। ५० बजेसे, मीनराशि दिनमें २। ३५ बजेसे,

मेषराशि सायं ५।३ बजेसे, अमावस्या, पंचक समाप्त सायं ५।३ बजे।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

वृषराशि रात्रिमें ८। ३८ बजेसे, सायन वृषका सूर्य सायं ५। २६ बजे।

भद्रा दिनमें ७। १ बजेसे सायं ६। ३६ बजेतक, मिथुनराशि रात्रिमें

भद्रा रात्रिमें ७।८ बजेसे, कर्कराशि दिनमें ९।५२ बजेसे, श्रीगंगासप्तमी।

भरणीका सूर्य दिनमें ७। ४१ बजे, मूल रात्रिमें १०। २८ बजेतक।

भद्रा दिनमें १२। ४५ बजेसे रात्रिमें १। ४६ बजेतक, मोहिनी

भद्रा दिनमें ७। ४२ बजेतक, मूल सायं ५। ५४ बजेसे।

सिंहराशि रात्रिमें ८। २ बजेतक, श्रीसीतानवमी।

वरूथिनी एकादशीव्रत (सबका), श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती।

भद्रा दिनमें ३। ३९ बजेतक, मूल सायं ६। ३२ बजेसे।

भद्रा रात्रिमें ७।५ बजेसे, मूल रात्रिमें ४।६ बजेतक।

मकरराशि दिनमें ९।६ बजेसे, श्रीशीतलाष्टमीवृत।

शिवकी अद्भुत कृपा

इस समय हमारे यहाँ जो निर्माणकार्य चल रहा है, परिस्थिति ज्यों-की-त्यों रही। सोलहवें दिन मैंने आत्महत्या

उसमें कार्यरत एक मिस्त्रीके मुखसे मैंने यह प्रसंग जैसा सुना, वैसा लिख रहा हूँ—

बात सन् १९९५-९६ ई० के आसपासकी है। उस समय मेरी अवस्था लगभग २५ वर्ष होगी। नवविवाहित

था, एक पुत्र भी हो गया था, आधुनिक इमारतोंमें जो

RCC का काम होता है, वहीं करता था। काम कभी मिलता था, कभी नहीं मिलता था। दैनिक मजदुरी भी

उन दिनों अधिक नहीं थी। रहनेको घर नहीं था, किसी भले आदमीने अपने घरके बाहरी बरामदेमें रहनेकी अनुमति दे दी थी। वहीं १०×१० वर्ग फुटकी जगहमें

पत्नी और बच्चेके साथ रहता था। बरसातमें उसकी छत इतनी टपकती थी कि एक ड्रम पानी इकट्ठा हो जाता। एक समय ऐसा आया कि लम्बे समयतक काम

ही न मिला। भोजनतकके लाले पड गये। प्रतिदिन अपने गाँवसे पैदल शिरवलतक जाता कामकी तलाशमें और निराश होकर वापस लौटता। शिरवल कोई बड़ा शहर तो नहीं, परंतु गाँवकी अपेक्षा बडा और विकासशील

था। मगर वहाँ भी काम न मिला। अभाव और भुखमरीने

मुझे मानसिकरूपसे विक्षिप्त कर दिया। कामकी तलाशमें घुमनेकी भी शरीरमें शक्ति नहीं रह गयी थी। हर समय गुमसुम और रोता रहता था। गाँवके एक सज्जनको मुझसे गहरी सहानुभूति थी। वे सज्जन मुझे शिखलनिवासी

एक ब्राह्मणके पास ले गये, जो सात्त्विक-सदाचारी और भक्त थे। शायद उनकी कृपासे कुछ भला हो जाय, ऐसा उद्देश्य था ले जानेके पीछे। ब्राह्मण महोदय भी मेरी कथा सुनकर व्यथित हो

गये। उन्होंने मुझे आश्वस्त करते हुए कहा—चिन्ता मत करो। तुम्हारे सब दु:ख दूर हो जायँगे। विशेष कुछ नहीं करना है। प्रतिदिन सुबह ठीक ७ बजे गाँवके शिवलिंगपर जल चढ़ाकर अगरबत्ती लगाया करो। मगर ध्यान रखना

ठीक सात बजे, न छ: पचपनपर और न सात पाँचपर। अगरबत्ती तो मेरे पास थी नहीं। सो मैं केवल जल चढ़ा आता था। पन्द्रह दिन यह क्रम चलता रहा, मगर

करनेका निश्चय कर लिया। जब पत्नी और बच्चेको दो वक्तकी रोटी भी नहीं दे सकता तो ऐसे जीनेसे क्या लाभ ? सो सोलहवें दिन मैं बिना जल लिये शिवमन्दिर

चला गया। माथा टेककर बोला—'आज मैं जल नहीं लाया, मगर आँसुओंसे तुम्हारा अभिषेक तो कर ही रहा हूँ। बस, अब मुझे मरनेकी अनुमति दे दो।' इतनी

प्रार्थनाकर मस्तक उठाया तो देखता क्या हूँ — सामने नागदेवता फन उठाये प्रकट हैं। मैंने उनसे कहा—'जल नहीं चढ़ाया, इसलिये गुस्सा हो गये क्या ? ठीक है। डँस

मगर मेरी बात सुनकर नागदेवता लुप्त हो गये। इस घटनाक्रमसे मुझे कुछ आशा-सी बँधी। मैं मन्दिरसे सीधा शिरवलकी ओर निकल पड़ा, मगर मार्गमें ही मुझे एक व्यक्ति मिला और बोला—'यहीं नजदीक एक कम्पनीमें बहुत बड़ा काम चल रहा है। वहाँ काम करोगे?' मैंने

हामी भर दी। मसाला बनानेकी एक सुप्रसिद्ध कम्पनीके

लो। मैंने तो वैसे भी आज मरनेकी ठान ही ली है।'

अहातेमें वह व्यक्ति मुझे ले गया, जहाँ बृहद् निर्माणकार्य चल रहा था और वहाँके ठेकेदारसे मुझे मिलाया। ठेकेदारने मुझे कामपर रख लिया। मेरी ईमानदारी, लगन और कार्यकुशलता देखकर 'शिवा' नामक वह ठेकेदार इतना प्रसन्न हुआ कि एक ही सप्ताह पूरा होनेपर उसने मुझे ग्यारह हजार रुपये दे दिये और कहा—'अपने घर-वरकी

मरम्मत कर लेना और सब ठीकठाक कर लेना।' उसके

बाद शिवाने मुझे और भी बड़े कार्यभार तथा दायित्व सौंपे,

जिन्हें मैंने बखूबी अंजाम दिया। लम्बे समयतक मैंने उसके साथ काम किया। तबसे लेकर आजतक मुझे कामकी कोई कमी नहीं रही। मैंने जीवनमें बहुत तरक्की की। मकान बनाया, दोनों लड़कोंको इंजीनियर बनाया। प्रार्थना सुननेवाले भी शिव और जीवनको नया मोड़ देनेवाले भी शिव (शिवा)। उनकी महिमा अगाध

है। एक लोटा जलके बदलेमें इतना सब कुछ आशुतोष भगवान् शिवशंकरके सिवाय दूसरा कौन दे सकता है? [प्रेषक — श्रीजितेन्द्रजी लिमण]

पढो, समझो और करो संख्या ३] पढ़ो, समझो और करो सभी ढोर तो आये थे। थोड़ा विचार-विमर्श करनेके बाद (8) पाप सिर चढ़कर बोलता है चरवाहा गायके मालिकके साथ गायको ढूँढ़नेका बहाना घटना सन् १९८७ ई० से पहलेकी है। मैं पेशेसे करके यह कहकर ले गया कि मैं आज यहीं मवेशी शिक्षक था। (वर्तमानमें सेवानिवृत्त हूँ।) मेरा स्थानान्तरण लाया था। कुछ देर बाद दोनों यह कहकर लौट आये मध्यप्रदेशकी तहसील हरसूदके ग्राम मालूदमें हुआ था। कि कहीं होगी तो आ जायगी। वर्तमानमें यह ग्राम डूबमें चला गया है। इस ग्राममें चरवाह वास्तविकतासे अनजान नहीं था। वह लगातार तीन दिनोंतक दूसरी ओर ही मवेशीको चराने बंजारा समाज अधिक होनेसे इसको बंजारोंका ग्राम कहते थे। यह घटना उसी गाँवके एक सज्जन स्व० ले जाता रहा। उसने सोचा अब तो गायको जंगली श्रीताराचन्द भाई राठौरसे मैंने सुनी थी। जो बोधप्रद जानवर खा गये होंगे। वह मवेशी लेकर उस ओर गया, होनेसे मैं लिख रहा हूँ। घटना इस प्रकार है-जिस ओर गाय गिरी थी। देखता क्या है कि गाय ग्राममें बंजारा समाज अधिक होनेसे पशुओं (गाय, लँगड़ाते हुए मुँह मार रही है। उसके आश्चर्यका भैंस, बकरी)-को चरानेका काम बंजारे ही करते थे। ठिकाना न रहा। घटना मई-जून माहकी (गर्मीके दिनोंकी) है। शामको समयसे सब ढोरोंके साथ उस गायको उस चरवाह रोज समयसे पशुओंको चराने ले जाता था और मालिकको सौंपकर वह प्रसन्न हुआ और कहा—सँभाल शामको समयसे लौटा लाता था। भाई! तेरी गाय मिल गयी। मालिक भी खुश हुआ। एक दिन ऐसा हुआ कि पशुओं के समूहमें से कुछ चरवाह रोजकी तरह भोजन-पानी पानेके बाद पश् इधर-उधर मुँह मारते हुए निकल गये। चरवाहने अपनी मित्र-मण्डलीमें आकर बैठा गप-शप करने लगा। आवाज दी तो कुछ पशु लौट आये और कुछ मुँह मारते पर कहते हैं— ही रहे। चरवाहने पत्थर उठाया और पशुओंकी ओर खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान। फेंका। पत्थर एक गायको ऐसी जगह लगा कि वह गिर रिहमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान॥ गयी। चरवाहने सोचा कि थोड़ी देर बाद उठकर आ अर्थात् चरवाह अपनी चतुराई और खुशीको दबा जायगी, पर ऐसा नहीं हुआ। समय हुआ और पशुओंको नहीं सका। उसने अपने मित्रोंसे सारी घटना विस्तारसे चरवाह घरकी ओर लाने लगा। उसका ध्यान उस गायकी कह दी कि गायको मैंने पत्थर मारा था और गाय तो ओर गया, जो गिर गयी थी। वह पासमें गया और देखा मर गयी थी। मैंने उसको पत्तोंसे ढक दिया था। आज तो गाय मर गयी थी। चरवाहको समाजसे बहिष्कृत देखा तो ले आया। इतना कह पाया था कि गायका होनेका भय सताने लगा। उसने मरी गायको बेसरम (जंगली मालिक दौड़ते हुए उसके पास आया और कहने लगा पौधे)-के पत्तोंसे ढक दिया और शेष मवेशी गाँवमें ले कि गाय तो मर गयी। सभीको सच्चाई तो पता चल आया। सबके मवेशी अपने-अपने घर पहुँच गये। चुकी थी। सभीने एक स्वरसे कहा—'तू हत्यारा है। तूने चरवाह भोजन-पानी पानेके बाद अपने मित्रोंके ही गायको मारा है।' गाँवके लोगोंने उसका हुक्का-साथ गप-शप करता चौपालमें बैठा। थोड़ी देरमें वह पानी बन्द कर दिया। सच है पाप दाबे नहीं दबता है। व्यक्ति उसके पास आया, जिसकी गाय घर नहीं आयी पाप सिर चढ़कर बोलता है। प्रकृतिने उसीके मुँहसे सच थी। उसने चरवाहसे शिकायत की तो चरवाहने कहा उगलवा लिया।—रामदास मेहता

भाग ८९ उसकी शर्टकी जेबमें कुछ रुपये डाल दिये। (२) गरीबकी आह धर्मशाला लौटे तो पता चला वे सज्जन पुत्र-इस जिन्दगीमें मैंने एक ऐसी घटना देखी है, जिसको पौत्रोंवाले हैं। मैं गोंदिया अपने घर वापस जानेको देख या सुनकर उस व्यक्तिमें भी भगवान्पर विश्वास और निकला तो वे भी मेरे साथ हो लिये। बसस्टैण्डपर आस्था जाग्रत् हो जायगी, जो भगवान्पर विश्वास नहीं पहुँचकर हम दोनों नासिक जानेवाली बसमें बैठ गये। करता होगा या नास्तिक होगा। बात ही कुछ ऐसी है। उनके पास बिस्कुटका पैकेट था, वे उसे खानेके करीब नौ-दस वर्ष पूर्व सन् २००५ ई० में मैं लिये खोल ही रहे थे कि इतनेमें भिखारिन-जैसी औरत, त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग, नासिक शिवजीके दर्शनोंके जिसके एक हाथमें कटोरा और दूसरे हाथमें गठरी थी, लिये गया था और एक धर्मशालामें रुका था। वहाँ एक बसमें चढ़ी। एक छोटा-सा बच्चा उस दु:खियारीका बुजुर्ग साहब भी ठहरे हुए थे, जो मुम्बईसे दर्शनके लिये पल्लू पकड़े-पकड़े चल रहा था। उस बच्चेका हुलिया आये थे। हम दोनों ही दर्शनके लिये साथ-साथ निकले। कुछ ऐसा था कि स्वयं यमराज भी होते तो उन्हें भी दर्शन करके जब बाहर आये तो भिखारियोंकी लाइन उसपर दया आ जाती, पर उस दिन होनी कुछ और लगी थी। कहते हैं कि तीर्थ या किसी पवित्र स्थलमें ही थी। जायँ तो गरीबों, दीन-दु:खियोंको कुछ-न-कुछ दान बिस्कुटका पैकेट मेरे साथीके हाथमें था। उन्हें तो जरूर देना चाहिये। पहलेसे ही भिखारियोंसे नफरत थी, पर उन्हें शायद यह जैसे ही मैं दान देनेके लिये आगे बढा, मेरे साथीन नहीं पता था कि कभी-कभी वक्त इतना खराब चलता दान देनेसे मना किया और कहा कि इस तरह अगर तुम है कि भीख माँगनेके सिवाय और कोई मार्ग दिखायी दान (धन) दोगे, तो ये जिन्दगी-भर भिखारी ही रहेंगे। नहीं देता। उस औरतने जैसे ही खानेको कुछ माँगा, मेहनत करनेकी आदत चली जायगी। तुम-जैसे लोग ही उन्होंने उसे खूब डाँट-डपटकर धिक्कार दिया। औरत इनको पैसे देकर सदाके लिये भिखारी बना देते हो। तो कुछ न बोली, पर उसका छोटा-सा भुखियारा बच्चा थोड़ा आगे चले तो घास बेचनेवाली महिलाएँ रोने लगा। इसपर औरत गिड़गिड़ाकर बोली कि मेरे लिये न सही, पर इस बच्चेकी खातिर ही कुछ खानेको दे दो। खड़ी मिलीं। उन्होंने पास आकर विनती की कि घास लेकर सामने खड़ी गायोंको खिलायेंगे तो पुण्य लगेगा। सुनकर उन बुजुर्गने गालियाँ देते हुए उस भिखारिन-पर यहाँ भी उन साहबने मुझे मना कर दिया और कहा जैसी औरतको बच्चेसहित बससे नीचे उतार दिया। उन्हें कि ये सारी गायें पालतू हैं। इनके मालिक सुबह इनका ऐसा लगा, जैसे यह औरत ढोंग कर रही है। उस औरतको दूध दुहकर जान-बूझकर घरसे बाहर निकाल देते हैं बेहद दु:ख पहुँचा और बच्चा भी जार-जार रोने लगा। और शामको घर ले जाकर फिर इनका दूध दुहते हैं। जाते-जाते वह बोली, 'आज जो तुमने मुझे और दूध दुहकर सुबह-शाम कमाते हैं। गायोंको घास मेरे अबोध बच्चेको धक्का देकर भगाया है, अपने पैसे खिलाना उनके मालिकोंका कर्तव्य है। मैं फिर चुप हो और समृद्धिपर इतना घमण्ड कर रहे हो, पर देखना कि गया, मुझे उनकी बातें मिर्च-जैसी लगीं। देखनेमें तो वे एक दिन बच्चा और पैसा ही तेरी मृत्युका सबब साहब धनवान् और सुखी-सम्पन्न लग रहे थे। इतनेमें (कारण) बनेगा।' सलीकेदार स्वच्छ कपड़े पहने एक व्यक्तिने दानकी यह सब इतना जल्दी घटित हो गया कि मैं कुछ यसिमार्वभ्रंहणु सिक्नेट्सान् Safeverentians: /the egas/enarman मूझ अने हा ह्याधा, Tसर Lett हिन हे ती vitas sha रामा

पढो, समझो और करो संख्या ३] बुजुर्गको कोसा है और बद्दुआ दी है। (3) मुझे भय लगने लगा कि यह बद्दुआ कहीं सच न ईमानदारी आज भी शेष है हो जाय, मगर उस अनजानको तो कुछ फर्क ही नहीं पड़ा घटना २४ जून १९९५ ई० की है राजस्थानके और बडे आराम-चैनसे सफर किया। रेलवे स्टेशन पहुँचकर दौसा जिलेकी सिंडोली-पंचायतके सरपंच अपनी मोटर हम अलग-अलग हो गये। वह मुम्बईकी और मैं गोंदियाकी साइकिलसे बाणगंगा होते हुए जा रहे थे, रास्तेमें उन्हें ट्रेनमें बैठा। बात आयी-गयी हो गयी। एक लावारिस पड़ी टोकरी मिली, जिसमें १३ हजार कुछ वर्षों बाद मुझे उन बुजुर्गवारका ख्याल ४५८ रुपये नकद, एक साडी, ब्लाऊज तथा टाइमस्टार घड़ी थी। कुछ देरतक वहीं रुककर वे चारों तरफ देखने आया। मैंने डायरीसे उनका मोबाइल नं० ढूँढा और उनका हाल-चाल जाननेको मुम्बई फोन लगाया। फोन लगे। वे सोच रहे थे कि यदि इस टोकरीका हकदार घरवालोंने उठाया और बताया कि उनका देहान्त कुछ कहींसे आ जाय तो उसे सौंपकर तब यहाँसे चलुँ, लेकिन बहुत देरतक भी जब कोई नहीं आया तो वे टोकरीको वर्ष पूर्व ही हो गया था। लेकर चले गये और गाँव-गाँवमें टोकरी-मालिककी मुझे सुनकर बहुत दु:ख हुआ। कारण पूछनेपर पता चला कि उनका आधीरातमें उठकर पानी पीनेकी तलाश करने लगे। आस-पासके क्षेत्रमें लगातार चार आदत थी। इसलिये पानीका भरा गिलास वे बिस्तरके दिनोंतक खोज-बीन करनेके बाद उन्होंने टोकरीके पास ही रखते थे। उस दिन उनके पोतेने खेलते-खेलते असली मालिकका पता लगा लिया। चवन्नी (पचीस पैसेका सिक्का) उस गिलासमें गिरा यह टोकरी सिंडोली-पंचायतकेपास गुढलिया दी। आधी रातको अर्धनिद्रामें उन्होंने उस गिलासका ग्रामकी एक महिलाकी थी, जिसके खो जानेके कारण पानी पिया और वह सिक्का उनकी श्वास नलीमें जाकर उस महिलाने खाना-पीनातक छोड़ दिया था। सरपंच अटक गया। किसीको बुला सकनेसे पूर्व ही उनके उस महिलाके पास पहुँचे और पूरी पूछ-ताछ करके प्राण-पखेरू उड़ गये। सुबह जागनेपर घरवालोंको उन्होंने रुपयों तथा सामानसहित टोकरी महिलाको सौंप मालूम पड़ा कि यह हादसा हो चुका है। दी। अपनी खोयी हुई टोकरी पाकर उस महिलाको यह सब सुनते ही मुझे उस गरीब औरतकी याद अपार हर्ष हुआ, लेकिन वह महिला यह सोचकर बहुत ही आश्चर्यचिकत थी कि आज इस घोर कलियुगमें भी हो आयी, जिसे उन्होंने डाँट-डपट एवं गाली-गलौजकर भुखियारे बच्चेसहित बससे नीचे उतार दिया था और जहाँ सर्वत्र अत्याचार, पापाचार एवं बेईमानीका साम्राज्य उस औरतने बदुदुआ दी थी कि एक दिन बच्चा और व्याप्त है, इस प्रकारका ईमानदार व्यक्ति समाजके पैसा ही तेरी मृत्युका कारण बनेगा। उस दीन औरतकी आदर्शके लिये उपस्थित है। उसने मानवताके साक्षात् बद्दुआ अपना काम कर चुकी थी। प्रतीक सरपंचको मूक आशीर्वाद दिया और पुनः उस दिनसे मेरा नजरिया बदल गया। तबसे मैंने ठान भगवान्की ओर उन्मुख होकर बार-बार प्रार्थना करती हुई कहने लगी—हे भगवन्! तुम्हारी इसी (सरपंच-लिया कि लानत-मलामत नहीं करनी चाहिये। हम अगर किसीकी मदद नहीं कर सकते तो कम-से-कम बेइज्जत सरीखी) मानवीय सृष्टिसे सम्पूर्ण धरापर धर्मका संरक्षण एवं समाजका उत्थान हो रहा है। सरपंच महोदयने यह तो नहीं ही करना चाहिये; न तो धिक्कारना चाहिये और न ही तिरस्कार करना चाहिये। - चन्द्रसेन रामनाणी सिद्ध कर दिया कि ईमानदारी आज भी शेष है। [प्रेषिका-श्रीमती आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर] - किशनकुमार लखाणी मनन करने योग्य

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्

शूरसेन देशमें चक्रवर्ती सम्राट् महाराज चित्रकेतु धरतीपर गिर पड़ी। उधर जिन विमाताओंने विष दिया था,

राज्य करते थे। उनकी एक करोड़ रानियाँ थीं। किंतु वे हत्यारी रानियाँ भी वहाँ आकर झूठ-मूठ रोनेका ढोंग कोई पुत्र नहीं था। करने लगीं। महारानी शोकग्रस्त होकर मूर्च्छित हो गयीं। एक दिन शाप और वरदान देनेमें समर्थ अंगिरा

ऋषि स्वच्छन्द विचरण करते हुए राजा चित्रकेतुके महलमें पहुँच गये। आतिथ्य-सत्कार हो जानेके बाद

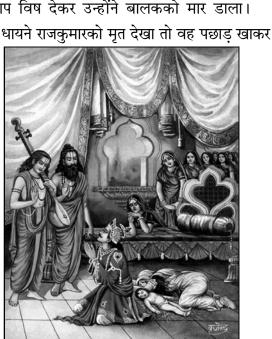
चित्रकेतुने पुत्रप्राप्तिकी कामना व्यक्त की। ऋषि अंगिराने बड़ी रानी कृतद्युतिको एक फल दिया और साथ ही कह दिया-राजन्! तुम्हारी पत्नीके

गर्भसे एक पुत्र होगा, जो तुम्हें हर्ष और शोक दोनों ही देगा। यों कहकर अंगिरा ऋषि चले गये। तदनन्तर समय

आनेपर महारानी कृतद्युतिने एक सुन्दर पुत्रको जन्म

दिया। पुत्रके जन्मसे महाराज तो अति प्रसन्न हुए, किंतु अन्य रानियोंके मनमें जलन होने लगी। प्रतिदिन बालकका लाड्-प्यार करते रहनेके कारण सम्राट् चित्रकेतुका

जितना प्रेम बच्चेकी माँमें था, उतना दूसरी रानियोंमें न रहा, इससे दूसरी रानियाँ ईर्ष्या करने लगीं। एक दिन चुपचाप विष देकर उन्होंने बालकको मार डाला।



उधर महाराज चित्रकेतु भी पुत्रशोकसे व्याकुल हो गये। उसी समय महर्षि अंगिरा एवं देवर्षि नारद उधरसे जा रहे थे। राजा चित्रकेतुको शोकाकुल देखकर वे दोनों

महाराजको समझाने आये। उन्होंने कहा-राजन्! जिसके लिये तुम इतना शोक कर रहे हो, वह बालक इस जन्म और पहलेके जन्मोंमें तुम्हारा कौन था और अगले

राजन्! हम, तुम और हम लोगोंके साथ इस जगत्में जितने भी चराचर प्राणी वर्तमान हैं - वे सब मृत्युके पश्चात् नहीं रहेंगे। इससे सिद्ध है कि इस समय भी उनका अस्तित्व नहीं है; क्योंकि सत्य वस्तू तो सब समय एक-सी रहती है। त्रिकालाबाधित सत्य तो

महर्षि अंगिराने कहा-राजन्! जिस समय पहले-पहल मैं तुम्हारे घर आया था, उसी समय मैं तुम्हें परम ज्ञानका उपदेश देता, परंतु मैंने देखा कि अभी तो तुम्हारे हृदयमें पुत्रकी उत्कट लालसा है, इसलिये उस समय तुम्हें ज्ञान न देकर मैंने पुत्र ही दिया। अब तुम स्वयं अनुभव कर रहे हो कि पुत्रवानोंको कितना दु:ख होता है-यही बात स्त्री, घर, धन, विविध प्रकारके ऐश्वर्य, सम्पत्ति, सगे-सम्बन्धी सबके लिये है; क्योंकि ये सब-

भी उचित नहीं है।

के-सब अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं, विनाशी हैं। अतएव ये सभी शोक, मोह, भय और दु:खके कारण हैं, मनके खेल-खिलौने हैं, सर्वथा कल्पित और मिथ्या हैं; क्योंकि

जन्मोंमें भी उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहेगा?

एकमात्र परमात्मा ही है। अत: शोक करना किसी प्रकार

ये न होनेपर भी दिखायी पड रहे हैं। यही कारण है कि एक क्षण दीखनेपर भी दूसरे क्षण लुप्त हो जाते हैं।

राजन्! तुम एकान्तमें एकाग्रचित्तसे आत्मचिन्तन

ख्या ३] मनन करने योग्य ४९			
****************	***********************************		
करो। तुम्हें सब कुछ स्वप्नवत् लगेगा।	आया हूँ ताकि मेरे वियोगमें तुम्हें भी उतना ही कष्ट हो;		
चित्रकेतु बोला—महाराज! मैं पुत्रके वियोग	में क्योंकि वृद्धावस्थामें युवा पुत्रकी अर्थीका बोझ भारी		
शोकाकुल हो रहा हूँ। ये सब ज्ञानकी बातें मुझे अच्ह	र्गि होता है और वह शोक करते-करते पागल हो जाता है,		
नहीं लगतीं। मुझे एकबार अपने पुत्रका दर्शन करा दे	। किंतु राजन्! इस रहस्यको जाननेके बाद बुद्धिमान् पुरुष		
देवर्षि नारदने अभिमन्त्रित जल छिड़क दिया अं	र शोक नहीं करते। जीव नित्य और अहंकाररहित है। वह		
मृत पुत्रको जीवित कर दिया।	गर्भमें आकर जबतक जिस शरीरमें रहता है, तभीतक		
जीवात्माने कहा—देवर्षे! ये मेरे किस जन्म	के उस शरीरको अपना समझता है। यह जीव नित्य,		
माता-पिता हैं ? मैं तो अपने कर्मोंके अनुसार देवत	ा, अविनाशी, सूक्ष्म (जन्मादिरहित), सबका आश्रय और		
मनुष्य, पशु-पक्षी आदि अनेक योनियोंमें न जाने कित	ने स्वयंप्रकाश है। इसमें स्वरूपत: जन्म-मृत्यु आदि कुछ		
जन्मोंसे भटक रहा हूँ। उनमेंसे ये किस जन्ममें मे	रे भी नहीं हैं। फिर भी यह ईश्वररूप होनेके कारण अपनी		
माता-पिता हुए?	मायाके गुणोंसे ही अपने-आपको विश्वके रूपमें प्रकट		
एक प्रसिद्धि ^१ के अनुसार जीवात्माने राजाव	ने कर देता है।		
सम्बोधित करते हुए कहा—पूर्वजन्मोंका फल भोगने ए	वं इसका न तो कोई अत्यन्त प्रिय है और न अप्रिय,		
एक-दूसरेसे कर्म-फलोंका हिसाब चुकाने ही जी	व न अपना और न पराया; क्योंकि गुण-दोष (हित-		
अलग-अलग योनियोंमें जन्म लेता है। तुम्हारी रानियों	ने अहित) करनेवाले मित्र-शत्रु आदिकी भिन्न-भिन्न		
मुझे विष देकर मार डाला और मुझसे बदला लिय	। बुद्धिवृत्तियोंका यह अकेला ही साक्षी है, वास्तवमें यह		
नारदजीकी कृपासे मुझे पूर्वजन्मोंकी कथा याद है।	अद्वितीय है। यह आत्मा कार्य-कारणका साक्षी और		
पूर्वजन्ममें तुम्हारी रानियाँ चींटी हुआ करती र्थ	: । स्वतन्त्र है, इसलिये यह शरीर आदिके गुण-दोष अथवा		
एक बार मैंने भोजन करके मुँह धोया तो कुल्लेका ज	•		
उन चींटियोंपर गिरा और सब चींटियाँ मर गयीं। इ			
जन्ममें वे ही चींटियाँ तुम्हारी पत्नीके रूपमें आयीं अं	र जीवात्माके मुखसे इस प्रकारका आत्मज्ञानका		
मुझे विष देकर मार डाला। मेरे पूर्व कर्मका ही फल मु	_		
पिला है।	उनका अन्त:करण स्वच्छ और निर्मल हो गया, प्रेमके		
उससे भी एक जन्म पहले मैं हिरण था। तुम व्या	ध आँसू छलक आये। शरीरका एक-एक रोम खिल उठा।		
	रे उसी दिन घर छोड़ दिया और शेष नारायणका दर्शन		
वियोगमें मेरे माता-पिताने तड़पकर प्राण त्याग दिय	·		
ठीक उसी प्रकार मैं भी तुम्हारा इकलौता पुत्र बनक	र [प्रेषक—श्रीश्यामसुन्दरजी पटेल]		
	••••		
	मायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजति प्रभु: ॥ सर्विधियां द्रष्टा कर्तॄणां गुणदोषयो:॥		
<u> </u>	(श्रीमद्भा० ६।१६।८—११)		

गोशालाओंकी सुरक्षा भारतमें प्राचीनकालसे गोरक्षा एवं गोसम्वर्द्धनके विशेष रूपसे स्थित हैं।

निमित्त पूर्वजोंने देशके विभिन्न भागोंमें गोसदन एवं काशीमें भी महामना मदनमोहन मालवीयजीने

गोशालाओंकी स्थापना की, जहाँ सामृहिक रूपमें गोसेवा एवं गोपालनकी व्यवस्था होती है। भारतीय संस्कृतिमें गौको माँके रूपमें सर्वोपरि श्रद्धा

प्रदान की गयी है। अपने शास्त्र तो कहते हैं कि 'गाय' में सम्पूर्ण देवी-देवताओंका निवास है। गायकी सेवा-पूजासे सम्पूर्ण देवी-देवताओंकी आराधना सम्पन्न हो जाती है। गोसेवासे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। यह तो है गोसेवाका पारमार्थिक लाभ, परंतु गौसे

जो लौकिक लाभ मिलते हैं, उनकी तो गणना ही नहीं की जा सकती। संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं, जिसका मल-मूत्र भी लोकोपकारी और पवित्र हो। कहते हैं कि माँके दूधके बाद गोदुग्ध ही मानव-शिशुका पोषण करता है तथा यह एक प्रकारका अमृत है। इस प्रकार गाय लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियोंसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्राणी है। इन्हीं सब दृष्टियोंसे गोशालाओंकी स्थापना वस्तुत: उन सहृदय पुरुषोंके द्वारा

हुई, जो गोमाताकी वास्तविकतासे परिचित थे। वे वृद्ध माँ-बापकी सेवा करनेकी भाँति ही बूढ़ी गोमाताकी सेवाको भी अपना परम कर्तव्य मानते थे। गोशाला नयी संस्था नहीं है। जैन और बौद्ध शासकोंके समय भी ऐसी संस्थाएँ

थीं। मुसलमानी कालमें भी थीं और उनमें केवल स्वस्थ

गायोंका ही नहीं; बल्कि बीमार और असहाय पशुओंका भी भरण-पोषण किया जाता था। यह एक ऐसा पवित्र धर्म समझा जाता रहा है कि सारा समाज इसमें हाथ बँटाता है और सद्गृहस्थ व्यापारी अपने व्यापारके मुनाफेका

कुछ अंश लगाकर इस कार्यमें सहायता करते हैं। आजके युगमें जनसंख्याकी वृद्धि एवं जीवनकी जटिलताओंके कारण सर्वसाधारण जनताके पास स्थान

आदि साधनोंका अभाव होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितिमें गोसेवाकी भावना होनेपर वे गायको अपने यहाँ न रखकर गोशालाके माध्यमसे गोपालन एवं गोसेवामें सहयोग कर सकते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे व्रज (गोकुल-वृन्दावन),

जीवदयाविस्तारणी गोशाला सवा सौ वर्षपूर्व स्थापित की थी, जो अनवरत रूपसे अबतक चल रही है। गोइठहाँ

ग्राममें स्थित 'बाबन-बीघा' इस गोशालाका एक मुख्य केन्द्र है। जहाँ सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें गायोंका पालन होता है तथा इसके साथ ही कटनेके लिये जा रही गायोंको कसाईयोंसे बचाकर उन्हें इसी गोशालामें संरक्षित किया

जाता रहा है, इस गोशालाके निकट कुछ जमीनें हैं, जिनमें गायोंके लिये हरा चारा उपजाया जाता है तथा वहाँ गायें चरती हैं, जिससे वे स्वस्थ रहती हैं, परंतु दुर्भाग्यवश आजकल एक नयी स्थिति बनी है-इस गोशालाकी जमीनपर

सरकारकी ओरसे सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लाण्ट बनाया जा रहा है, इसके लिये गोशालाकी कई एकड भूमि अधिग्रहीत की जा रही है। गोशालाके ट्रस्ट बोर्डकी ओरसे इलाहाबाद उच्च न्यायालयसे स्टे भी प्राप्त किया गया था, अधिकारियोंके प्रयत्नसे स्टे-आर्डरको निरस्त कराकर अधिग्रहणकी कार्यवाही

वर्ष पुरानी गोशाला नष्ट हो जायगी, कारण सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लाण्टकी दुर्गन्धके कारण वहाँ गाय स्वस्थ नहीं रह सकती। विश्वस्त सुत्रसे यह मालूम हुआ कि इस सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लाण्टकी योजना संथवा ग्रामके लिये बनी थी, उसके मोड़तक पाइप लाईन भी बिछायी गयी है, परंतु कुछ राजनीतिक कारणोंसे यह प्लाण्ट वहाँ न लगाकर

गोशालाकी भूमिमें लगाया जा रहा है। गाय तो एक निरीह एवं मूक प्राणी है, वह तो प्रत्यक्ष रूपसे विरोध भी नहीं कर सकती। अत: सरकारको स्वयं संवेदनशीलताका परिचय देते हुए व्यापक हितोंमें इस योजनाको अन्यत्र स्थानान्तरित करना चाहिये।

प्रारम्भ कर दी गयी। मिली जानकारीके अनुसार यदि

गोशालाकी भूमिपर यह कार्य सम्पन्न हुआ तो सवा सौ

गोसम्वर्द्धन एवं गोसंरक्षणके लिये आज आवश्यकता है कि सरकार स्थापित गोशालाओंकी तथा उनसे सम्बन्धित गोचर-भूमिकी रक्षा करते हुए और अधिक गोचर-भूमि गोशालाओंको प्रदान करे।

द्वारका तथा जगन्नाथपुरी आदि तीर्थस्थलोंमें गोशालाएँ Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

Dear Contributors,

Kalyana-Kalpataru, the English monthly Magazine published by Gita Press, Gorakhpur, has proposed to publish Character Building Number as their annual number in October 2015.

The tentative list of suggested topics is given below. The contributors are requested to choose any topic from the list or may select any related issue for their write up. The write up should be concise and expression simple and lucid. The write up may please be sent to reach us by 15th June, 2015.

Character Building Number

1. What do we understand by Character? 2. How to Build Character? 3. What is the necessity of Building Character? 4. How far does Character help in God-realization? 5. Glory of good Character in Vālmīki Rāmāyaṇa 6. Glory of good Character in Tulasīdāsa's Rāmāyaṇa 7. What is loss of Character? 8. What factors help in Building Character? 9. What are obstacles in Building Character? 10. Role of mother in Building Character 11. Role of religion in Building Character

12. Necessity of Character in Students 13. Necessity of Character in Women 14. Bad consequences of loose Character 15. Strength of Character 16. Character in relation to Nation 17. Character in relation to City 18. Character in relation to Family 19. Main characteristics of Character 20. Background of Character 21. Sources of Character 22. Who can Build Character? 23. How to read Character? 24. Character Building in Children 25. Character Building in Youth 26. Self-determination in Character Building 27. Principles of Character in Manusmrti 28. Norms of Character in ancient Texts 29. Norms of Character in Vedas 30. Celibacy—the Foundation of Character 31. Character in Jain

Scriptures 32. Character in Buddhist Literature 33. Character in Christian Traditions 34. Character in different religions' Traditions 35. National Character of Hindu Society 36. Ideal Character 37. Inspiring stories for Building Character 38. Character of Śwetaketu in Upaniṣads 39. Character of Naciketā in Upanisads 40. Persons of Ideal Character—i. Lord Rāma ii. Truthful Hariścandra iii. Truthful Yudhisthira iv. Sage Dadhīci v. Satyakāma Jābāla vi. Upakośala vii. Cow-devotee Dilīpa viii.King Śibi ix. Devotee Prahlāda x. Sītājī xi. Sumitrājī xii Satī Madālasā xiii. Satī Sāvitrī xiv. Yaśodharā xv. Satī Anasūyā. खुल गया है — चेन्नईमें कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१ - प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,

२-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक, ३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम-केशोराम अग्रवाल,

(गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये).

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर, ४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका.

राष्ट्रगत सम्बन्ध-भारतीय, पता-गीताप्रेस, गोरखपर,

५- उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पुँजीके भागीदार हैं:-गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

में केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं। केशोराम अग्रवाल,

(गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

इलेक्ट्रो हाउस, नं० २३, रामनाथन स्ट्रीट, किलपौक, चेन्नई-६०००१० (तमिलनाड्)। 🕿 ०४४-२६६१५९५९, फैक्स-२६६१५९०९

अब बेंगलुरु दुकानका पता इस प्रकार है—

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान—७/३, सेकेण्ड

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दुकान

क्रास, लाल बाग रोड, बेंगलुरु—५६००२७ (कर्नाटका)। गीताप्रेस website: www.gitapress.org

कल्याण website: www.kalyan-gitapress.org Kalyan Kalpataru website: www.kalyana-kalpataru.org गीताप्रेस पुस्तक-दुकान : www.gitapressbookshop.in

गीता-दैनन्दिनी २०१५ (कोड 503) मूल्य ₹ ५५ अभी भी सीमित संख्यामें उपलब्ध

e-mail: booksales@gitapress.org



प्र० ति० २०-२-२०१५

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें अब उपलब्ध



तीर्थाङ्क (कोड 636)—इस विशेषाङ्कमें तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप, स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन-अध्ययनका विषय है। इसमें देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयोगी बातोंका भी उल्लेख है। भारतके प्राय: समस्त तीर्थोंका अनुसन्धानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा संकलन है जो तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसके स्वाध्यायसे भी तीर्थाटनके सहज आनन्दको प्राप्त करनेका अलौकिक सुख प्राप्त किया जा सकता है। मूल्य ₹२००

गोसेवा-अङ्क (कोड 653)—शास्त्रोंमें गौको सर्वदेवमयी और सर्वतीर्थमयी कहा गया है। गौके दर्शनसे समस्त देवताओंके दर्शन तथा समस्त तीर्थोंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है। इस विशेषाङ्कमें गौसे सम्बन्धित अनेक आध्यात्मिक और तात्त्विक निबन्धोंके साथ, गौका विश्वरूप, गोसेवाका स्वरूप, गोपालन एवं गो-संवर्धनकी मुख्य विधाएँ तथा गोदान आदि उपयोगी विषयोंका संग्रह हुआ है। यह अङ्क गौके आध्यात्मिक, आधिभौतिक स्वरूपका ज्ञान करानेवाला तथा गोसेवाकी प्रेरणा प्रदान करनेवाला है। मूल्य ₹१३०





श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन (कोड 571) ग्रन्थाकार—योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका चिरत्र भारतीय इतिहास और पौराणिक साहित्यका प्राण है। उनकी भिक्त मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पर्यवसान भगवान् श्रीकृष्णके अलौिकक चिरित्रके वर्णनमें ही हुआ है। इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर, बाल तथा पौगण्ड अवस्थाकी विभिन्न लीलाओंका बड़ा ही साहित्यिक, सरस एवं भावपूर्ण चित्रण किया गया है। इसमें वर्णित चित्रके स्वाध्यायसे भाव-समुद्रमें डूबा जा सकता है। मूल्य ₹१५०

श्रीरामचरितमानस (कोड 1318) ग्रन्थाकार (मूल) रोमन-वर्णान्तर—श्रीरामचरितमानस भारतीय धर्म-दर्शनका अद्भुत व्याख्याता है। इसकी आदर्श शिक्षाको विश्वव्यापी बनानेके उद्देश्यसे प्रकाशित यह संस्करण अंग्रेजी भाषा-भाषी पाठकोंके लिये विशेष लाभदायक है। अंग्रेजी अनुवाद, सचित्र, सजिल्द, आकर्षक आवरणसहित। मूल्य ₹३०० (कोड 1617) मझला साइजमें भी उपलब्ध। मूल्य ₹१००

पाठकोंसे नम्र निवेदन

इस वर्ष जनवरी २०१५ का विशेषाङ्क 'सेवा-अङ्क' के वी० पी० पी० का प्रेषण तकनीकी कारणोंसे धीमी गितसे १३ फरवरीतक चला। जिन ग्राहकोंको वी० पी० पी० भेजी गयी थी उनके भुगतानकी प्रतीक्षा किये बिना फरवरी एवं मार्चके अङ्क सभी ग्राहकोंको प्रेषित कर दिये गये हैं, जिससे पाठकोंको मासिक अङ्क समयसे प्राप्त हो जाय।

अब कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर पढ़नेके लिये पाठकोंको उपलब्ध कराये जा रहे हैं। व्यवस्थापक—'कल्याण कार्यालय'—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५